महाभारत के पात्र ५
द्रोण
अश्वत्थामा

C

रत के पात्र : ८

द्रोण अश्वत्थामा

नानाभाई भट्ट

१९७१

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

•

पांचवीं बार : १९७९
मूल्य रु० ३.००

•

मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

प्रकाशकीय

भारतीय वाङ्मय के जिन दो महान ग्रंथों ने देश-विदेश के असंख्य व्यक्तियों को अनुप्राणित किया है, उनमें महाभारत का स्थान अग्रणी है। उसका गहन अध्ययन जहां पाठकों के विचारों को स्वस्थ मानसिक खाद्य प्रदान करता है, वहां अपने जीवन को समुन्नत करने की भी प्रेरणा देता है।

पाठकों का परम सौभाग्य है कि गुजरात के विख्यात लेखक नानाभाई भट्ट ने महाभारत के प्रमुख पात्रों को चुन-कर बड़े ही सुन्दर तथा सारगर्भित ढंग से उनका चरित्र-चित्रण किया। प्रत्येक पात्र का चरित्र पाठकों के लिए कितना महत्व रखता है और वर्त्तमान युग में उससे क्या शिक्षा मिलती है, लेखक के चित्रांकन से यह स्पष्ट हो जाता है।

इस माला में ग्यारह पुस्तकें हैं। वे सभी सुपाठ्य और संग्रहणीय हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने आचार्य द्रोण और अश्व-त्थामा का परिचय कराया है और उनके जीवन की अंतरंग झांकी उपस्थित की है।

हमें विश्वास है कि पाठक इस तथा इस माला की सभी पुस्तकों को बड़े चाव से पढ़ेंगे और उनसे अपने जीवन में प्रेरणा लेंगे।

—मंत्री

अनुक्रम

आचार्य द्रोण

१ / द्रोण की गृहस्थी

द्रोण भरद्वाज मुनि के पुत्र थे और उनकी पत्नी का नाम कृपी था। कृपी शरद्वान् मुनि की कन्या और कृपाचार्य की बहन थी। द्रोण और कृपी का पुत्र अश्वत्थामा था।

द्रोण की गृहस्थी बड़ी गरीबी में चलती थी। जीवन की मामूली-से-मामूली चीजों तक के लिए उनको कठिनाई होती थी। एक बार शाम के समय द्रोण जब घर पहुंचे, कृपी बाहर बरामदे में बैठी थी। बाल बिखरे हुए थे, मुंह उतर रहा था, रोते-रोते आंखें सूज गई थीं और पास की फटी चटाई पर अश्वत्थामा सो रहा था।

"कृपी ! आज अश्वत्थामा अभी से कैसे सो गया ?" बरामदे में घुसते ही द्रोण ने पूछा।

"न सोये तो जाये कहां ? मेरे पेट से पैदा हुआ है न ! उसका भोग तो उसे भोगना ही पड़ेगा। न सोयेगा तो करेगा क्या ?" कृपी ने टेढ़ी निगाह से देखते हुए जवाब दिया।

"आखिर हुआ क्या ? बता तो। क्या किसी के साथ लड़ाई-झगड़ा हो गया ?" द्रोण ने सहज भाव से पर दुःखी स्वर से पूछा।

कृपी ने हाथ झड़काते हुए जवाब दिया, "लड़ाई-झगड़ा करने जैसा होने पायेगा तब न ! उससे पहले कहीं वह मेरे हाथों

ही समाप्त न हो जाय !''

"लेकिन बात क्या हुई है, यह भी बताओगी या नहीं ? किसी ने मारा है इसे ?''

"और कौन मारेगा ! मारनेवाली अकेली मैं ही तो हूं। तुम्हारे लिए तो तुम्हारी अस्त्र-विद्या भली और तुम भले ! बच्चे को मुझे सौंपकर चलते बनते हो, फिर यह जानने की जरूरत भी नहीं रहती कि उसने कुछ खाया-पिया है या नहीं। इसकी जरूरत ही क्या है ? आखिर तुम लोग शादी करते ही क्यों हो और क्यों परमात्मा तुम्हें सन्तान देता है ? कितने लोग संतान के लिए तरसते रहते हैं ! और एक यह घर है कि भगवान् ने संतान दी तो उसे पालने-पोसने की सुविधा भी नहीं दी !'' कृपी आंखों में आंसू भरकर द्रोण की तरफ देखती हुई बोली।

"यह सब तो ठीक। लेकिन हुआ क्या है, पहले यह तो बता।''

"गांव के सभी बालक दूध पी-पीकर खेलने के लिए आये। उन्होंने अश्वत्थामा को चिढ़ाना शुरू किया, इसलिए यह भी 'दूध-दूध' करता हुआ मेरे पास आया।''

"फिर ?''

"फिर क्या, घर में दूध की हंडिया भर देनेवाली गायें तुमने बांध रक्खी हैं न ! इसलिए अश्वत्थामा एक बड़ा-सा कटोरा भरा दूध गटगट पी गया !''

द्रोण सुनते रहे, लेकिन कुछ बोले नहीं। इसलिए कृपी ने अपनी बात आगे बढ़ाई, "और थोड़ी देर में रोते-रोते वह वापस आया और कहने लगा, 'सभी लड़के मुझसे कहते हैं कि तेरे घर दूध कहां से आया ? देख, तेरे मुंह पर तो आटा लगा हुआ है।

तेरी मां ने तुझे आटा घोलकर पिला दिया मालूम होता है।' यह कहकर वह मुझे मारने लगा। खूब रोने और मचलने लगा, इस-पर मुझे गुस्सा आ गया और मैंने उसकी खूब पिटाई की। मार खाकर वह सो रहा है।"

"कृपी !" आंखों में आंसू भरकर द्रोण बोले, "यह तुमने बहुत बुरा किया। इसे मारा क्यों? शांति से समझाना चाहिए था।"

कृपी ने आवेश में भरकर कहा, "किस मुंह से ऐसा कहते हो? तुम्हें तो सिर्फ मुंह से कहना ही आता है। किसी दिन यह भी सोचा है कि तुमने विवाह भी किया है और घर में और भी दो जीव बैठे हैं!"

"कृपी !" द्रोण बोले, "तुम क्या कह रही हो, कुछ समझ-कर तो बोलो। क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि भरद्वाज का पुत्र मूर्ख है?"

"जरूर।" जोश में आकर कृपी ने कहा, "तुम लोगों को विवाह करना ही नहीं चाहिए था। जिसे सच्चा शुद्ध ब्राह्मण-जीवन बिताना है और संसार की सेवा करके ही कल्याण-साधन करना है उसका गृहस्थी के जंजाल में पड़ना ही मूर्खता है। विवाह करके तुम स्वयं झंझट में पड़ते हो, साथ में स्त्रियों को भी डालते हो और फिर संतान होने पर ब्राह्मण-जीवन की बातें करते-करते जंजाल से मुक्त होने का दावा करके भागते-फिरते हो!"

"कृपी! ब्राह्मण-जीवन पर जब ऐसे प्रहार सुनता हूं तो मेरे भीतर ज्वाला भभक उठती है।"

"पतिदेव! प्रहार तो मैं तुम-जैसों पर करती हूं ब्राह्मण-

जीवन ऐसा भ्रष्ट नहीं होता, यह मैं जानती हूं।''

"कृपी! अग्निवेश के आश्रम से निकलते समय कैसे स्वप्न रचे थे, इसकी तुम्हें कल्पना नहीं। सोचा था, जन्मभर ब्रह्मचारी रहूंगा और यदि विवाह करना ही पड़ा तो उच्च आध्यात्मिक विवाह कर सारे विश्व-भर की सेवा में जीवन बिताऊंगा। लेकिन मेरी यह आकांक्षा मात्र रह गई और इस घर में द्रोण को आज यह व्यवहार देखना पड़ रहा है!''

"मैं भी यही कहती हूं। विद्यार्थी अवस्था में पोषित मनोहर स्वप्नों को हाड़-मांस से बने मानवों की दुनिया में चरितार्थ करने का अवसर आने पर ही तो खरी कसौटी होती है। तुमने स्वप्न रचे होंगे, लेकिन तुम्हारा मन इतना दुर्बल है कि संसार की अटपटी घटनाओं में तुम चक्कर खा गये। मैं तो छोटी-सी बात जानती हूं। तुमने गृहस्थी बसाई और संतान पैदा हुई। इसलिए संतान को देखते हुए जीवन के साधन पूरे करने चाहिए। गृहस्थी बसाते समय तो वैराग्य न हो और संतान के पोषण का प्रश्न सामने आते ही वैराग्य की धुन सवार हो इसीका नाम तो ढोंग और अधर्म है। अध्यात्म का रंग चढ़ा हो तो संतानोत्पत्ति बन्द करो। यदि यह न कर सकते हो तो फिर संतान के भरण-पोषण जितनी कमाई अवश्य करो। मेरी अपनी बुद्धि के अनुसार जो व्यक्ति इतनी साधारण बात भी नहीं करता, वह पाप करता है।''

"तो मैं भी पाप करता हूं!''

"अवश्य! तुम्हारा पाप वेश बदलकर आता है। इसलिए तुम्हें प्रतीत न होता हो तो बात दूसरी है।''

"कृपी तुम्हारे शब्द तीर की तरह हृदय के आर-पार हो

जाते हैं। घड़ी-भर तो ऐसा लगता है कि कहीं जाकर अपनी विद्या के प्रताप से एकाध देश का राज्य हस्तगत कर लूं, जिससे कि तुम्हारी यह रोज-रोज की झंझट मिट जाय। लेकिन ज्योंही भरद्वाज मुनि का जीवन आंखों के सामने आता है, हृदय में एक विशेष प्रकार की शांति का अनुभव होता है और मन करता है कि जीवन-भर आश्रम में विद्यार्थियों को ही पढ़ाता रहूं।

"दूसरी बात यह है कि तुमने जो अपना पड़ोस ढूंढ़ा है, यह भी मुझे तो तुम्हारी भूल ही मालूम होती है।" कृपी ने कुछ शान्त होकर कहा, "हमें ब्राह्मण रहना हो और बच्चों को भी ब्राह्मण रखना हो तो यह पड़ोस निभ नहीं सकता। यहां तो पैसे-वाले रहते हैं। इसलिए सारे वातावरण में धनिक जीवन की रंग-रेलियां मची रहती हैं। किसी को स्वयं मेहनत करनी नहीं पड़ती। दूसरे के पसीने की कमाई से पैदा हुए पैसे निगले जाते हैं। नित्य भांति-भांति के मेवा-मिष्टान्न उड़ाना, कला और धर्म के नाम पर स्वच्छन्दता से इन्द्रियों के भोग-भोगना, बिना हाथ-पैर हिलाये बैठे रहना और बुद्धि-विलास के नाम पर निकम्मी चर्चाएं करना, यह यहां का वातावरण है। ऐसे वातावरण में ब्राह्मण-बालकों के मन विचलित न हो जायं तो क्या हो, धनिकों के बालक रोज नये-नये खिलौने लेते हैं, इसलिए अपने बालकों का मन भी चलता है। बालक कुछ समझते थोड़े ही हैं। असल में तो ये लोग अच्छे-बुरे जीवन के ऐसे गलत मानदण्ड सामने खड़े कर देते हैं कि हम बड़ी मुसीबत में पड़ जाते हैं। पड़ोसी होने के कारण न तो उनसे बिलकुल अलग रहा जा सकता है, न उनमें मिला ही जा सकता है। ऐसी हालत में अपना अश्वत्थामा बिगड़ेगा ही, यह निश्चित जानो।"

"यह तो सब फुरसत के समय विचार करके तय करेंगे। दुनिया में इस तरह अकेले हम ही अच्छे और दूसरे सब निकम्मे हैं, यह सोचकर तो फिर जंगल में रहा जा सकता है। फिर भी तुम जो कहती हो, वह ध्यान देने योग्य बात तो है ही। लेकिन अभी हमें क्या करना है?" द्रोण ने कहा।

कृपी ने जवाब में कहा, "देखो, मैं तो लड़के को मारकर रो ली और रोने के बाद अन्त में मैंने मन में यह निश्चय कर लिया कि जब तक एक गाय घर के आंगन में नहीं बंध जाती तब तक चैन न लूंगी। मेरा यह दृढ़ निश्चय है। इसलिए तुम गाय के बारे में सोच लो।"

द्रोण ने कहा, "अश्वत्थामा के लिए गाय कोई बड़ी बात नहीं है, लेकिन प्रश्न यह है कि तत्काल गाय मिले कहां से? मन में तो आता है कि इसके लिए मुझे अपनी विद्या को भी बेचना पड़े तो बेच डालूं।"

"तुम कई बार मुझसे पांचाल देश के राजा द्रुपद की बात किया करते हो। तब क्या वह राजा तुम्हें एक गाय भी नहीं दे सकता?" कृपी ने कहा।

"कृपी! द्रुपद की तुमने भली याद दिलाई। मैं इस द्रुपद की तुझसे क्या बात करूं? अग्निवेश के आश्रम में विद्याभ्यास के दिनों में हमने जीवन के जो आनन्द लूटे, उनको जब याद करता हूं तो आज भी रोमांच हो आता है। द्रुपद्र तो द्रुपद ही है। हमारे शरीर दो थे, लेकिन प्राण एक ही थे। आश्रम के वृक्षों के नीचे बैठकर हम घण्टों बातें किया करते और रात बीत जाती। नदी के किनारे चांदनी में चक्कर काटते हुए जीवन के अनेक प्रश्नों पर मन के घोड़े दौड़ाते। जब हम आश्रम से जुदा हुए तो

दोनों रो पड़े। द्रुपद ने मुझे कसकर छाती से लगा लिया, और बार-बार कहता रहा, "द्रोण, मैं राजा बनूंगा, तब तुझे कोई कष्ट नहीं रहेगा।"

"इसीलिए तो मैं कहती हूं कि तुम द्रुपद राजा के पास जाओ और अपने अश्वत्थामा के लिए एक गाय मांग लाओ।"

द्रोण जरा सोच में पड़ गये और कुछ देर बाद बोले, "ठीक है, मैं वहां जाऊंगा। लेकिन कृपी, तुम भी साथ चलो तो कैसा?"

"मैं ! मैं वहां जाकर क्या करूंगी ? वे तुम्हारे मित्र हैं। तुम्हीं हो आओ।"

"कृपी, मेरी और द्रुपद की मैत्री क्या चीज है, इसका तुम्हें पता नहीं। मैं गया और द्रुपद को यह मालूम हुआ कि मैं अकेला ही आया हूं तो वह मुझे कितना उलाहना देगा, इसका भी तुझे ध्यान है ! हम कई वर्षों बाद मिलेंगे, इसलिए द्रुपद मेरे गले से झूम जायगा और यदि अकेला हुआ तो बचपन की बातें याद करके एक-दो घूंसे भी जमा बैठे तो आश्चर्य नहीं। कृपी, यदि इस समय मेरे साथ नहीं चलोगी तो वहां पहुंचकर मुझे तुमको बुलाने के लिए यहां फिर आना पड़ेगा, या किसी को भेजना पड़ेगा। इससे तो अच्छा यही है कि तुम मेरे साथ ही चली चलो।" द्रोण ने कहा।

"मेरी और इस छोटे बालक की वहां कहां गुजर होगी ?" कृपी ने सन्देह भरे स्वर में कहा।

"इसमें गुजर की बात ही क्या है ? क्या द्रुपद के घर रोटियों की कमी है ? तुम्हें पता नहीं, द्रुपद तो तत्काल ही तुम्हें अपनी रानियों के पास ले जायगा, अश्वत्थामा उसके बालकों के साथ खेलेगा और तुम्हें तब पता लग जायगा कि द्रोण की एक बड़े

राजा के साथ कैसी मित्रता है। इसलिए तुम मेरे साथ अवश्य चलो।''

"मेरा मन नहीं मानता। तुम जाओ और गाय ले आओ। वहां पहुंचने पर द्रुपद बहुत आग्रह करे और मेरे बिना काम ही न चले तो मुझे बुला लेना।''

"फिर क्या बुलाना! अपने घर जाना और द्रुपद के यहां जाना बराबर ही है। इसमें तो द्रुपद के आग्रह की भी जरूरत नहीं है। मैं आग्रह की प्रतीक्षा करूं, मैत्री की दृष्टि से यह उचित नहीं कहा जा सकता। तुम साथ ही चलो।'' द्रोण ने आग्रह-पूर्वक कहा।

"नहीं, मुझसे व्यर्थ ही आग्रह न करो। मेरे मन में उत्साह नहीं होता। द्रुपद राजा कहलाता है। युवाकाल में की हुई मैत्री हवा में भी उड़ सकती है। वहां सभी तरह का राजसी ठाठ-बाट होगा। राजमहल, रानियां, विविध भोग-विलास, राजकुमारों की चहल-पहल और नौकर-चाकरों का जमघट। तुम्हारे लिए तो यह ठीक है कि द्रुपद तुम्हारा मित्र है, इसलिए तुम्हें कुछ अटपटा न लगेगा, लेकिन रानियां मुझे किसलिए बुलायेंगी! फिर हम ठहरे गरीब! रानियों के रीति-रिवाज जानते नहीं। इसलिए मेरे लिए तो मेरा घर ही भला। अश्वत्थामा भी गड़बड़ करता रहता है, इसलिए मैं तो कहीं भी साथ में नहीं चलना चाहती।''

"नहीं, तुम्हें तो चलना ही पड़ेगा। मेरे घर तो तुम्हें जीवन को जीवन समझने का अवसर न मिला, लेकिन मित्र के यहां तो तुम वह अनुभव कर सकोगी। सिर्फ दो ही दिन की तो बात है। तुम्हारे भाई कृपाचार्य हस्तिनापुर रहते हैं। राजाओं की

रीतिनीति का उन्हें तो पता होगा ही। इसलिए कल सुबह हमें निश्चित रूप से वहां चलना है। उठो, अब अश्वत्थामा को जगा लो, भोजन कर लें।"

अश्वत्थामा को जगाकर तीनों जने भोजन करने बैठे।

२ / मैत्री : वैर

"महाराज द्रुपद की जय हो! जय हो!" द्रुपद के महल में घुसते ही द्रोण ने आशीर्वचन कहे और महल में प्रवेश किया।

"महाराज, आप किसलिए पधारे हैं ?" द्रुपद के एक अंगरक्षक ने नम्रतापूर्वक पूछा।

"द्रुपदराज मुझे अच्छी तरह जानते हैं। मुझे उनसे बातें करनी हैं। इसलिए दूर से चलकर यहां आया हूं।" द्रोण ने जवाब दिया।

अंगरक्षक बोला, "महाराज, द्रुपदराज को तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए आपसे मिल नहीं सकेंगे। आपका जो काम हो, वह मुझसे कहिए।"

द्रोण ने कहा, "पांचालराज की तबीयत ठीक नहीं है ? तब तो मुझे उनसे जरूर मिलना चाहिए।"

अंगरक्षक ने उत्तर दिया, "लेकिन आप मिल नहीं सकते।"

"तुम मुझे पहचानते भी हो ? मैं भरद्वाज मुनि का पुत्र द्रोण हूं। मैं और पांचालराज अग्निवेश के आश्रम में साथ-साथ पढ़ते थे।" द्रोण ने कहा।

अंगरक्षक बोला, "हां, आपके आने का समाचार सुनाने पर महाराज ने मुझे सब बताया था।"

द्रोण ने कहा, "तब मेरा समाचार द्रुपदराज तक पहुंच गया मालूम होता है।"

अंगरक्षक बोला, "हां, उनके कहने से ही मैं कह रहा हूं कि आप मिल नहीं सकते!"

द्रोण ने कहा, "भाई, तुम क्या कहते हो! तुम्हारी बात सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। पांचालराज ने मजाक तो नहीं किया? मैं और द्रुपद से मिल नहीं सकता! क्षत्रियकुमार, मैं तो द्रुपद का गुरु-भाई हूं। द्रुपदराज बीमार हों, उस समय उनकी इच्छा के बिना चाहे वैद्यगण न मिल सकें, लेकिन द्रोण उनसे न मिल सके, यह कभी संभव नहीं हो सकता। एक बार अग्निवेश के आश्रम में द्रुपद का अंगूठा पक गया था, उससे उनको बहुत जलन हो रही थी। उस समय जलन शांत करने के लिए यह द्रोण अंगूठा पकड़कर सारी रात उसमें फूंकें मारता रहा था। ऐसी और भी कई रातें हमने बिताई हैं। हमारे इस स्नेह का तुम्हें क्या पता! लेकिन द्रुपदराज यह सब जानते हैं। राज्य की सुविधा की दृष्टि से राजा की बीमारी की हालत में किसी के उनसे न मिल सकने की व्यवस्था करनी पड़ सकती है लेकिन मैं तो द्रोण हूं। जाकर महाराज द्रुपद से कहो।"

अंगरक्षक बोला, "महाराज, मुझे क्षमा करो। मैं जो कहता हूं वह महाराज का ही आदेश है। महाराज आपसे मिलना नहीं चाहते। आप हमारी राजकीय भाषा में नहीं समझे, इसलिए मुझे स्पष्ट शब्दों में कहना पड़ रहा है।"

"महाराज स्वयं मुझसे मिलना नहीं चाहते।" द्रोण को यह जानकर सहज ही आघात पहुंचा। उन्होंने कहा, "उन्होंने मुझे पहचाना न होगा। भाई, मैं तो उनका मित्र हूं।"

अंगरक्षक बोला, "महाराज ने आपको पहचान लिया है। आपकी सूचना मिली, तभी महाराज कह रहे थे कि 'राजा-महाराजाओं की गरीब भिक्षुओं के साथ मित्रता कैसी !' अब आपको क्या कहना है ?"

अंगरक्षक के मुंह से यह शब्द सुनते ही द्रोण स्तब्ध रह गये। उनका मुंह फीका पड़ गया। उनके हाथ-पैर क्रोध के मारे कांपने लगे। उनके मन के महल सब एकसाथ चूर-चूर होकर गिर पड़े। उन्होंने कहा, "भाई, द्रुपद कहां हैं ?"

अंगरक्षक ने जवाब दिया, "विश्राम कर रहे हैं।"

"इस पास वाले कक्ष में ही जो बैठे हैं, वही मुझे द्रुपद प्रतीत होते हैं। मुझे उनके पास जाना है।" यह कहते हुए द्रोण के पैर उधर को बढ़ने लगे।

"महाराज, आज्ञा नहीं है।" अंगरक्षक यह कहकर उन्हें रोकने लगा। लेकिन द्रोण तो अग्निरूप धारण करके सीधे कक्ष में जा पहुंचे। महाराज द्रुपद एक बड़े सिंहासन पर बैठे-बैठे पास के कमरे की यह सब बातचीत सुन रहे थे। द्रोण ने कमरे में घुसकर एक बार फिर अभिवादन करते हुए कहा, "महाराज द्रुपद की जय हो।"

द्रोण सिंहासन के निकट पहुंचे और कहने लगे, "महाराज द्रुपद, क्या मुझे पहचाना ?"

"तुम्हें कहीं देखा तो जान पड़ता है।" द्रुपद ने कहा।

"मैं भरद्वाज का पुत्र द्रोण हूं। अग्निवेश के आश्रम में हम साथ-साथ पढ़ते थे।" द्रोण ने याद दिलाई।

"हां, तुम कहते हो तब याद तो आती है। जहां इतने सारे शिष्य पढ़ते हों, वहां सबकी याद भी किस तरह रह सकती है ?"

द्रुपद ने उपेक्षा भाव से कहा।

द्रोण ने सिंहासन के अधिक निकट जाकर कहा, "शिष्य इतने अधिक थे, यह तो ठीक है; लेकिन द्रोण और द्रुपद घनिष्ठ मित्र थे, इतना अन्तर था।"

"ब्राह्मण, दूर खड़े रहो। राजा-महाराजाओं की गरीब भिक्षुकों के साथ मित्रता नहीं हो सकती।" द्रुपद ने रोष से कहा।

मणिधर सर्प का मानो किसी ने मन्त्र से कील दिया हो और वह फुफकारता हो, द्रोण उसी तरह स्तब्ध हो गये। क्रोध के मारे उनके नथुने फड़कने लगे, उनकी आंखें लाल हो गईं, भवें तन गईं और सारा शरीर कांपने लगा। फिर भी शान्त भाव धारण करके उन्होंने कहा, "क्या यह द्रुपद वोल रहा है ? क्या यह वृषत् राजा का पुत्र बोल रहा है ? क्या यह अग्निवेश का शिष्य द्रुपद वोल रहा है ? अथवा मैं स्वप्न-जगत् में विचरण कर रहा हूं ?"

"द्रोण," द्रुपद ने सम्बोधन करके कहा, "हां, वृषत् राजा का पुत्र मैं द्रुपद ही बोल रहा हूं। पांचाल देश के स्वामी द्रुपद की यह वाणी है। द्रोण ! द्रुपद राजा द्रोण का मित्र नहीं हो सकता। मैत्री तो समान व्यक्तियों के बीच ही सम्भव हो सकती है।"

"पांचाल के स्वामी द्रुपद ! अग्निवेश के आश्रम में एक साथ विद्याभ्यास करते समय हम लोगों ने जीवन के जो-जो स्वप्न रचे थे, क्या वह सब तुम्हे याद हैं ?" द्रोण ने जरा स्वस्थ होते हुए कहा।

"उन दिनों रचे होंगे। जवानी में तो मनुष्य ऐसे रंग-बिरंगे स्वप्न गढ़ता ही रहता है।" द्रुपद ने उपेक्षा के साथ जवाब

दिया।

द्रोण ने दुःखित हृदय से कहा, "द्रुपद, द्रुपद ! आश्रम के वातावरण में रचे हुए स्वप्नों का भी राज-हृदय में इतना मूल्य होता होगा, यह आज ही मालूम हुआ।"

"द्रोण, तुम जैसा आवारा हमारे समान राजाओं के साथ सम्बन्ध रखने में स्वार्थ-दृष्टि रखता होगा, मुझे भी आज ही इसका अनुभव हुआ। अरे, कभी गरीव और अमीर के बीच मित्रता सुनी है ? विद्वान् और मूर्ख के बीच कभी मैत्री हुई है ? वहादुर और डरपोक में कभी मित्रता सुनी है ? द्रोण, तुम भूलते हो। द्रुपद और द्रोण के बीच मैत्री हो नहीं सकती।"

द्रोण का क्रोध फिर भड़क उठा। उन्होंने लाल होकर कहा, "द्रुपद ! तुममें राज्य-मद की इतनी अधिक खुमारी, सिंहासन का इतना अधिक अभिमान ! तुम विधाता के किसी संयोग से वृषत् राजा के यहां पैदा हुए, इसीसे इतने महान् हो गए और मैं भरद्वाज की झोंपड़ी में पैदा होने के कारण छोटा हो गया ! क्या राजाओं का रक्त लाल और ब्राह्मणों का काला होता है ? द्रुपद, द्रुपद ! जरा सोचकर देखो।"

"मैं जो कहता हूं, सोच-समझकर ही कहता हूं। तुम्हें कुछ धन आदि मांगना हो तो खुशी से मांगो, लेकिन तुम्हारा मैत्री का दावा मैं स्वीकार नहीं कर सकता, वैसे कोई भी ब्राह्मण-पुत्र मेरे लिए वन्दनीय है।"

"द्रोण द्रुपद के पास भीख मांगने नहीं आया है। गरीब होते हुए भी वह भरद्वाज का पुत्र और अग्निवेश का शिष्य है। द्रोण की यदि द्रुपद के साथ मैत्री सम्भव नहीं हो सकती तो वह द्रुपद से किसी तरह की याचना भी नहीं कर सकता। द्रुपद, यह

अच्छी तरह समझ रख, द्रोण की ब्राह्मण-जीवन की गरीबी सीमातीत कष्टदायक हो जायगी तो वह ब्राह्मण-जीवन का त्याग कर देगा, किन्तु द्रुपद जैसे राजा के सामने तुच्छता से हाथ न फैलायेगा।''

"यह तुम्हारी मरजी की बात है।''

"द्रुपद, हम आश्रम से जब अलग हुए थे उस समय तुमने अपने-आप मुझे एक वचन दिया था। वह याद है ?''

"दिया होगा, इस समय तो मुझे कुछ भी याद नहीं आता।''

"याद नहीं आयगा, राजन् ! याद नहीं आयगा। याद नहीं आता, यह भी इस गद्दी का प्रताप है। मेरे पिता कहा करते थे कि मनुष्य को ब्राह्मण बनना हो तो ऐसी गद्दियों से सौ योजन दूर रहना चाहिए। द्रुपद ! और कुछ नहीं, तुम जैसा राजा मुझ जैसे का इतना अपमान करे और मैं उसे सहन कर चलता बनूं, इसमें मुझे अपनी विद्या लज्जित होती प्रतीत होती है। एक बार तो तुम्हारे जैसे राजाओं के दिमागों को ठिकाने लगाने के लिए हमें ब्राह्मण-जीवन को घड़ी-भर के लिए खूंटी पर टांगकर हाथ में शस्त्र ले लेना चाहिए; और तुम्हें बताना चाहिए कि हम जो शस्त्र धारण नहीं करते, वे अपनी इच्छा से ही नहीं करते, किसी कायरतावश नहीं। ऐसा लगता है कि तुम राजा लोग राजाओं के साथ ही मैत्री करते हो तो एक बार यह ब्राह्मण द्रोण भी राजा बनकर तुम्हारी मैत्री का दावा सिद्ध करे। द्रुपद ! अब भी जरा सोच।''

"अब सोचना तो तुम्हें है।'

"अच्छा यह बात है !'' द्रोण गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए-से बोले, "तुमने सोच लिया है तो द्रोण ने भी सोच लिया

है। द्रुपद, तुम वृषत् राजा के पुत्र हो तो मैं भरद्वाज का पुत्र हूं। तुम अग्निवेश के शिष्य हो तो मैं भी उनका शिष्य हूं। तुम महाराज हो तो मैं शस्त्र-विद्या का आचार्य हूं। द्रुपद, लो, तुम्हारे इस राज-दरबार में ही मैं ब्राह्मण-जीवन का त्याग करता हूं। पिता भरद्वाज ! गुरु अग्निवेश ! क्षमा करना। ब्राह्मण-जीवन के स्वप्न सिद्ध करने के लिए दूसरा जन्म लेना पड़ा तो लूंगा, किन्तु एक बार तो इस द्रुपद के दिमाग को ठिकाने लाने के लिए अपनी सारी शस्त्र-विद्या का प्रयोग करके ही रहूंगा। द्रुपद, तुम्हारे दरबार में आया तो था अपनी मैत्री के संस्मरण को ताजा करने, लेकिन यहां से जाता हूं, तुम्हारे साथ दुश्मनी बढ़ाने का निश्चय करके। राजाओं की मैत्री कैसी कपटपूर्ण होती है तुमने इसका भान इतनी देर में कराया, यह भी एक उपकार ही है। अब विदा लेता हूं।'' यह कहकर द्रोण चलने लगे।

''महाराज द्रोण, राजा गद्दी पर बैठते हैं, इससे उनपर तो गद्दी का मद सवार हो जाता है, लेकिन ब्राह्मणों को बिना गद्दी के किस चीज का मद चढ़ आता है ? क्या विद्या का मद राज-मद अथवा धन-मद से कोई अच्छी वस्तु है।'' द्रोण के जाते-जाते द्रुपद ने कहा।

किन्तु उसके ये शब्द कानों में पड़ते-न-पड़ते द्रोण महल से बाहर हो गये थे।

३ / गुरु-दक्षिणा

आगे महाराज द्रुपद और पीछे पांडु-पुत्र अर्जुन चल रहे थे। द्रुपद के दाहिने हाथ में सुनहरी जंजीर पड़ी थी और अर्जुन

अपने हाथ में रत्न-जटित तलवार थामे हुए था। कपिलवस्तु नगर के बाहर, जहां द्रोणाचार्य कौरवों से घिरे हुए बैठे थे, अर्जुन पहुंचा और द्रोणाचार्य से बोला, "आचार्य देव, यह लीजिए अपनी गुरु-दक्षिणा।"

द्रोण के हर्ष का पार न था। वर्षों की प्रतिज्ञा आज पूरी हुई। इसलिए वह उत्साह से खड़े हुए और "शावाश, पुत्र अर्जुन! शाबाश! तूने आज मेरी विद्या सफल की।" यह कहकर उसे कसकर छाती से लगा लिया।

इसके बाद द्रुपद के पास जाकर द्रोण ने कहा, "पांचाल-राज द्रुपद, मुझे पहचाना ?"

द्रुपद ने छाती तानकर, आंखों में रोष धारणकर, निर्भीकता से जवाब दिया, "द्रोण, मैंने तुम्हें कभी का पहचान लिया था। आज मुझे निश्चय हो गया कि उस दिन मैंने तुम्हें ठीक ही पह-चाना था।"

द्रोण कहने लगे, "द्रुपदराज, अर्जुन ने तुम्हें बन्दी बनाया है और मुझे सौंपा है। अब तो द्रुपद और द्रोण के बीच मैत्री सम्भव हो सकती है ? अब तो द्रुपद और द्रोण समान कोटि के समझे जा सकते हैं ?"

द्रुपद खिलखिलाकर हंस पड़ा, कुछ जवाब नहीं दिया।

इसपर द्रोण अधीर हो उठे और पूछने लगे, "पांचालराज ! बोलो, जवाब क्यों नहीं देते ?"

"जवाब क्या दूं ?" द्रुपद कहने लगे, "द्रोण ! भरद्वाज का पुत्र और अग्निवेश का शिष्य तीन तस्सु जमीन के स्वामी द्रुपद जैसे कोरे ठाकुर के समान होने के लिए अपने ब्राह्मण-जीवन का त्याग करे और हस्तिनापुर के दरबार में अपनी विद्या बेचे, यह

कितनी लज्जा की बात है ! द्रोण, यह ठीक है कि तुम मेरे समान हो गए हो; लेकिन इस समानता के खरीदने में तुमने बहुत महंगा मूल्य दिया है।"

द्रुपद का ऐसा अकल्पित उत्तर सुनकर द्रोण कुछ स्तम्भित हो उठे, लेकिन फिर सम्भलकर बोले, "द्रुपद, एक बार तो मैंने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी कर ली और तुम्हें रास्ते पर ले आया। मुझे सन्तोष है कि अपने दरबार में तुमने मेरा जो अपमान किया था, मेरे शिष्य ने तुम्हें पराजित करके उसका बदला दे दिया।"

"कुंतीपुत्र अर्जुन ने मुझे इस जंजीर से बांधा है, इससे तुम्हें अपनी विजय प्रतीत होती हो तो भले ही हो।" महाराज द्रुपद ने गर्व से कहा, "लेकिन द्रोण, मुझे क्षमा करना यदि मैं कहूं कि मैं तो आज भी द्रुपद की ही विजय देख रहा हूं। यह निश्चय रक्खो कि जिस दिन से तुमने कृपी तथा अश्वत्थामा के साथ अपना स्थान छोड़कर हस्तिनापुर की ओर कदम रक्खा तबसे आजतक की तुम्हारी सब हलचलों से मैं अच्छी तरह से परिचित हूं। इसीलिए मैं कह सकता हूं कि विजय यदि किसी की भी हुई है तो द्रुपद की हुई है और द्रोण तो विजय के बदले पराजय के पथ पर ही चल पड़े हैं !"

पांचालराज के ऐसे धृष्टतापूर्ण वाक्य सुनकर द्रोण आश्चर्यचकित रह गए। उन्हें आशा थी कि द्रुपद उनके चरण पकड़कर दीनता व्यक्त करेगा। गद्‌गद हो जायगा, अपने मन में लज्जित होगा और अपनी भूल स्वीकार करेगा; लेकिन इसके विपरीत द्रुपद तो और भी दूने उत्साह से अपनी विजय का बखान करने लगा, इससे द्रोण खिन्न हो गए। फिर भी बोले, "द्रुपद, मेरी इस

प्रत्यक्ष विजय से इनकार करके तुम अपनी विजय के गीत गाते हो ! क्या तुम मुझे समझा सकते हो कि इसमें तुम्हारी विजय किस तरह हुई ?"

"अभी द्रोण अपने विरुद्ध कोई कुछ कहता है तो उसे सुन सकते हैं, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई।" द्रुपद ने तुरन्त उत्तर देते हुए कहा, "आचार्य, सुनो ! तुम स्वयं भरद्वाज के पुत्र और अग्निवेश के शिष्य हो। जिस तरह भरद्वाज के बाद अग्निवेश ने आश्रम सम्भाला उसी तरह तुम भी अग्निवेश के बाद आश्रम सम्भाल सकते थे और भारतवर्ष के अनेक क्षत्रिय-कुमारों को अस्त्र-विद्या सिखा सकते थे। यह करने के बजाय तुमने हस्तिनापुर के राज्य-परिवार में अपनी विद्या बेची और इस प्रकार तुम समस्त देश के आचार्य न रहकर गिने-चुने शिष्यों के आचार्य बने। यह हुई तुम्हारी पहली पराजय।"

"द्रुपद ! तुमने मेरा अपमान किया, इसलिए मेरे लिए और कोई दूसरा रास्ता ही नहीं था।" द्रोण ने बीच में ही कहा।

"मैं अपमान करने वाला कौन होता हूं ?" द्रुपद ने जवाब दिया, "तुम्हारे ब्राह्मणत्व में तेज हो तो, मैं तो क्या, संसार के सारे द्रुपद मिलकर भी अपमान करें तो भी वह मन्द नहीं हो सकता। मेरे जैसे तो कितने ही जबान चलाते रहते हैं, इससे क्या होता है। और फिर मेरी मैत्री ही क्या ? द्रोण जैसा ब्राह्मण, और मेरी मैत्री की याचना करने आवे ? आचार्यदेव ! तुम ऐसे ब्राह्मण हो कि हजारों द्रुपद तुम जैसे ब्राह्मणों के पैर दबायें तो भी उन्हें मैत्री प्राप्त न हो। लेकिन मेरे वचनों की मार के कारण तुम मेरे ही समान बनने की खोज में निकले, इससे तो मुझे अपने समान उच्च बनाने के बजाय तुम स्वयं मेरी श्रेणी में नीचे उतर

आये। राजगुरु बने रहने के लिए अपनी झोंपड़ी के बदले तुम्हें राजमहल मिला, अपने और कृपी के फटे चिथड़ों के बजाय वस्त्रों के थान-के-थान आये, तुम्हारे अश्वत्थामा को आटे के पानी की बजाय दूध के कटोरे मिले और आज मुझे बन्दी बनाया, इसलिए पांचाल के राजा भी बन जाओगे। यह सबकुछ मिला, लेकिन द्रोण ! यह सब प्राप्त करने के लिए तुमने अपना ब्राह्मण-जीवन व्यय कर डाला, इसका भी तुमने कुछ विचार किया है ? और द्रोण ! मुझ-जैसे पामर की वाणी ! सच मानो तो मैं कहूंगा कि शुद्ध ब्राह्मण-जीवन के साथ अखिल विश्व के साम्राज्य को तराजू में रक्खा जाय तो वह भी बराबर नहीं हो सकता। यह है तुम्हारी दूसरी पराजय।''

"द्रुपद, तुम्हारे शब्द हृदय में बैठते ही दाह पैदा करते हैं। अब और क्या कहना है ?'' द्रोणाचार्य ने कहा।

द्रुपद बोले, "सुनना हो तो कहने के लिए तो अभी भी बहुत कुछ है। क्या यह सच है कि भील-कुमार एकलव्य तुम्हारे पास विद्याभ्यास के लिए आया था ?''

"हां, आया था। लेकिन मैंने स्वीकार नहीं किया।'' द्रोण ने जवाब दिया।

"मैं भी यही बात कहना चाहता हूं।'' द्रुपद ने कहा, "मेरे महल में तुमने ही पूछा था कि क्या क्षत्रिय का रक्त लाल होता है और ब्राह्मण का काला ? द्रोण! अब वही बात मैं तुमसे पूछना चाहता हूं कि क्या पाण्डव और कौरवों का रक्त लाल था और भील-कुमार का काला ? हम तो संसारी जीव ठहरे। क्षुद्र स्वार्थ के लिए रक्त-रक्त में भेद करते हैं, देश-विदेश में भेद करते हैं, संस्कृत-असंस्कृत में भेद करते हैं और इस तरह की

अनेक दीवारें. खड़ी करते हैं। किन्तु तुम तो आचार्य हो ! तुम्हें तो अधिकारी व्यक्ति को दीक्षा देनी चाहिए। ब्राह्मण ने ज्ञान की प्याऊ खोली हो, वहां जिस किसी को प्यास हो वह जी भर-कर अपनी प्यास बुझा सकता है । लेकिन द्रोणाचार्य ! तुमने खड़े होकर एकलव्य को अस्वीकार किया, यह तुम्हारी तीसरी पराजय है।"

"तुम ठीक कहते हो। लेकिन पितामह के विचार ही ऐसे थे कि राजकुमारों को ऐसे-वैसे शिष्यों के साथ मिलाने से उनमें कुसंस्कार पैदा हो जाते हैं, इसलिए मुझे उनके साथ और किसी को नहीं पढ़ाना चाहिए।" द्रोण ने अपना पक्ष-समर्थन करते हुए कहा।

जवाब में द्रुपद ने कहा, "पितामह तो यह कहते ही; लेकिन तुम तो सच्ची बात देख सकते थे। राजकुमारों के संस्कार कैसे होते हैं, इसका पता मुझे भी है, इसलिए यह बात तो जाने ही दो। लेकिन तुम तो भीष्म से भी आगे बढ़ गए !"

"किस तरह ?"

"जिस एकलव्य को तुमने हस्तिनापुर में विद्या पढ़ाना स्वीकार नहीं किया, बाद में उसीके पास स्वयं तुम उसका अंगूठा लेने दौड़े गये।" द्रुपद हंस पड़ा। "क्या यह सच है ? वह तुम्हारा शिष्य नहीं था, तब तुम्हें उससे गुरु-दक्षिणा मांगने का क्या अधिकार था ? लेकिन द्रोण ! उसके गुरु भी बने, दक्षिणा भी मांगी और दक्षिणा में मांगा भी तो उसका अंगूठा ! तुम्हारा यह अर्जुन सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बने, केवल इसी मोहवश एकलव्य का अंगूठा कटाते हुए तुम्हें शर्म नहीं आई ? द्रोण ! तुम राजकुमारों के आचार्य बने, राजमहल में रहने लगे और मुझ-जैसे राजाओं

को दण्ड देने निकले, इससे तुम्हारे ब्राह्मण-जीवन के पाये धीरे धीरे टूटने लगे हैं और यदि समय रहते सावधान नहीं हुए तो परिणाम बुरा ही निकलने वाला है।"

"द्रुपद, मैंने तुम्हारे वचनों से आहत होकर तुम्हारी पराजय की प्रतिज्ञा की थी, वह आज पूरी हो गई। अब आगे मुझे क्या करना चाहिए, यह मैं खुद सोच लूंगा।"

"आचार्य, तुम भूलते हो। यह बात तो बिलकुल ठीक है कि युद्ध में तुमने मुझे पराजित किया; लेकिन मुझ-जैसों की पराजय के परिणाम की कल्पना तुम नहीं कर सकते। क्या तुम यह समझते हो कि द्रुपद की हार हो जाने से सबकुछ ठीक हो गया? मैंने तुम्हें राजमहल में परास्त किया, इसलिए मुझे परास्त करने की धुन तुममें सवार हुई। आज तुमने मुझे परास्त किया है, वह पराजय भी निर्बीज न रहेगी। इस पराजय की संतान पैदा होगी, तब उसे सम्भाल सकना किसीको भी भारी पड़ सकता है। द्रोण! तुम ब्राह्मण थे, फिर भी मेरे वचन सुनकर झुंझला गये और मेरे साथ शत्रुता की। तब मैं तो क्षत्रिय हूं, मेरी नसों में वृषत् राजा का रक्त प्रवाहित हो रहा है, मेरे मानापमानों का विधान राजमहलों में गढ़ा गया है इसलिए तुम्हें यह तो नहीं समझ लेना चाहिए कि द्रुपद इस पराजय को शान्ति से सहन कर जायगा। हां, मुझे यह प्रतीत होता है कि मैंने तुम्हारा जो अपमान किया था उसे यदि तुमने सह लिया होता तो मन पर उसका प्रभाव पड़ा होता और जीवन की किसी शुभ घड़ी में मैं तुम्हारे चरणों में सिर झुकाता। किन्तु आज अब तुम मुझसे यह आशा न करना। मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि कालचक्र के किस प्रभाव से प्रेरित होकर उस दिन मैंने तुम्हारा तिर-

स्कार किया। लेकिन अब तो बाण धनुष पर से छूट चुका है। आचार्य द्रोण, किस सोच में पड़ गये हो ?"

द्रोण स्वप्न से जाग्रत् होने के समान सचेत होकर बोले, "इस समय मन में ऐसा प्रतीत होता है जैसे कितने ही वर्ष बीत जाने पर आज हम दोनों अग्निवेश के आश्रम के चरण पखारती हुई नदी के तट पर चांदनी में बैठे हैं और द्रुपदकुमार जीवन की कथाएं सुना रहे हैं। द्रुपद ! कहां तो वह गुरुकुल का आवास और कहां द्रुपद का यह बन्धन ? अर्जुन ! महाराज द्रुपद को बंधन-मुक्त करो। महाराज द्रुपद, मेरा चित्त स्वस्थ नहीं है, इसलिए मैं जल्दी ही हस्तिनापुर जाना चाहता हूं। तुम्हें तुम्हारी पांचाल की गद्दी पर पुनः अधिष्ठित करता हूं। किन्तु इस विजय के अपने भाग के रूप में आधे पांचाल में आज से मेरे नाम की दुहाई दी जायगी।"

"जैसी आचार्य की इच्छा।"

"महाराज द्रुपद ! अब तो प्रसन्न हुए ?" द्रोण ने पूछा।

"प्रसन्न तो तुम्हें होना है।" द्रुपद ने कहा, "ब्राह्मणों की प्रसन्नता पर संसार का कल्याण निर्भर है। किन्तु द्रोणाचार्य ! यह निश्चय समझ रक्खो कि जब ब्राह्मण ब्राह्मण-जीवन का त्याग करके संसार के कीड़े बनने लगते हैं तब उनका वध करने-वाले जीव भी पैदा हो ही जाते हैं। आज तो तुम जाओ। कुमारो! तुम्हें भी जाना होगा। कुंतीपुत्र अर्जुन, आज मैं तुम्हारी बहादुरी से चकित और प्रसन्न हूं।"

४ / युद्ध-सभा में

दुर्योधन ने पाण्डवों की युद्ध की चुनौती स्वीकार की और कुरुक्षेत्र के मैदान पर ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होने लगी। दुर्योधन ने भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य को सारी कौरव-सेना का अधिपति बनाने का निश्चय किया था। कर्ण ने युद्ध में भाग लिया तो पितामह मन लगाकर सेनापति का काम नहीं करेंगे, इस डर से कर्ण को आरम्भ में युद्ध से मुक्त कर रक्खा था। कुरुक्षेत्र के मैदान में सेनाओं के पड़ाव की पूरी तैयारी हो चुकी थी, इसलिए हस्तिनापुर की सेना को कूच करने का हुक्म मिला।

सेना के अग्रभाग में भीष्म और द्रोण जानेवाले थे, इसलिए कूच के अगले दिन रात को युद्ध के सम्बन्ध में अन्तिम विचार करने और समूचे युद्ध की योजना का ब्योरा तैयार कर लेने के लिए दुर्योधन के राजमहल में कौरवों की युद्ध-सभा हुई। भीष्म पितामह समस्त युद्ध-रचना के द्रष्टा की भांति इस सभा के अध्यक्ष के रूप में एक बड़े सिंहासन पर बैठे थे। द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, दुःशासन, शकुनि, दुर्योधन आदि सब उपस्थित थे। राधा-पुत्र कर्ण एक ओर कोने में बैठा हुआ सब सुन रहा था।

पितामह के सभा का कार्य आरम्भ होने की सूचना देते ही द्रोणाचार्य अपने आसन पर से खड़े होकर सब सुन सकें, ऐसे धीर-गम्भीर स्वर से बोले, "इस भारतीय युद्ध के नक्शे पर हम विचार आरम्भ करें, इससे पहले मुझे इस सभा के सामने कुछ बातें रखनी हैं। मैं इस समय जो कुछ कहना चाहता हूं, वह अब तक अनेक अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से मैं कह चुका हूं।

लेकिन आज मैं उन सब प्रसंगों को एकसाथ मिलाकर सामने रखता हूं, जिससे मेरे कथन का आशय अधिक स्पष्टता से सबकी समझ में आ जाय। अवश्य ही युद्ध का समय इतना निकट आ चुका है और सेना के कूच करने के आदेश इतना दबाव डाल रहे हैं कि मेरा इस समय का कथन अन्तिम क्षण की-सी बात प्रतीत होगा। लेकिन जो बात सच हो वह किसी भी जगह और किसी भी समय कह ही देनी चाहिए, यह समझकर, ऐसे समय में अपनी बात मैं कह रहा हूं।

"मैं कहना चाहता हूं कि कौरव-पाण्डवों का यह युद्ध किसी तरह रुक जाय और दुर्योधन तथा युधिष्ठिर आपस में समझौता कर लें, इस बात के प्रयत्न की कल्पना आवश्यक है। मैं इन भारत-कुमारों का आचार्य और जाति का ब्राह्मण हूं। दुनिया में इतने बड़े-बड़े ज्वालामुखी फूट निकलते हैं। उससे पहले पृथ्वी-तल पर रहनेवाले लोगों को इस बात की जरा भी खबर न थी कि इस पृथ्वी के गर्भ में कितने ही वर्षों से अनेकानेक उष्ण धाराएं जोरों से प्रवाहित हो रही हैं। किन्तु भूगर्भ-विद्या-विशारद ब्राह्मण इस बात को जान लेते हैं। भारतवर्ष के क्षत्रिय-समाज में वर्षों से ऐसी धाराएं मैं देखता आ रहा हूं। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि यह युद्ध ऐसे उष्ण प्रवाह का अवश्यम्भावी परिणाम है। इतने पर भी, पितामह! मैं मानता हूं कि इस परिणाम को रोका जा सकता है, इसीलिए कहता हूं कि दुर्योधन युधिष्ठिर के साथ समझौता कर ले।

"भीष्म! आप कौरव-वंश के पितामह हैं। समस्त कौरव-वंश के हितचिन्तक हैं। ऐसी दशा में आप आज उसी कौरव-वंश के अमंगलस्वरूप इस युद्ध के साक्षी क्यों बनते हैं? इस

दुर्योधन ने पाण्डवों को परेशान करने में कोई कसर वाकी नहीं रक्खी। मैंने तो यह अनुभव किया है कि दुर्योधन के जीवन का एकमात्र धन्धा पाण्डवों को परेशान करना रहा है। इसी दुर्योधन ने भीम को विष खिलाया; पाण्डवों को जला डालने की योजना बनाई और जुए में छल करके उन्हें जीता। इसी दुर्योधन ने मेरे और आपके देखते-देखते द्रौपदी की कितनी वेइज्जती की; इसीने पाण्डवों को मृगचर्म और वल्कल वस्त्र धारण करवाकर जंगल में भेजा और आज यही दुर्योधन पाण्डुराज के पुत्रों को एक सूत बराबर भी भूमि न देने की जिद पकड़े बैठा है।

"राजागण ! आप जानते हैं कि दूध के समान अमृत-जैसी वस्तु भी सांप के पेट में पहुंचकर विष वन जाती है। महाराज युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं। उनकी किसीके साथ शत्रुता नहीं, इसलिए तो वे अजातशत्रु कहलाते हैं। पाण्डवों ने धृतराष्ट्र की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया; गन्धर्वों ने दुर्योधन को पकड़ा उस समय पाण्डवों ने उसे छुड़ाया; जयद्रथ ने द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली तो भी दु:शला के पति को युधिष्ठिर ने क्षमा कर दिया। लेकिन इन और ऐसे अन्य उपकारों को दुर्योधन पी गया है और इनके बदले में उलटे वैर-विष ही बढ़ाया है।

"पितामह ! एक वात पर आपका और मुझे विचार कर लेना है। यह दुर्योधन आपके और मेरे वल पर युद्ध छेड़ बैठा है। उसके लिए ऐसा करना स्वाभाविक ही था, क्योंकि यद्यपि हम आजतक दुर्योधन के एक भी अधर्म कृत्य की निन्दा किये बिना नहीं रहे, फिर भी हमने उसका साथ नहीं छोड़ा। द्यूत-सभा में हमारे देखते-देखते कौरवों ने पांचाली की लज्जा अपहरण की और समग्र आर्य-संस्कृति के निधिपति भीष्म तथा समग्र शस्त्र-

विद्या के आचार्य द्रोण मूढ़ की तरह बैठे देखते रहे ! उस दिन बहादुर विकर्ण को तो पुण्य का प्रकोप हो आया, लेकिन हमें नहीं हुआ। पितामह ! मैं यह खूब समझता हूं कि अधर्मी के अधार्मिक कृत्यों के प्रति मौन साध लेना भी अधर्म ही है। इतने पर भी अपने मन की दुर्बलता के कारण मैं दुर्योधन का साथ छोड़ नहीं सका। पितामह ! भरद्वाज के पुत्र और अग्निवेश के शिष्य द्रोण अपना इतना ब्रह्मचर्य हस्तिनापुर के राजमहलों में गंवा बैठे यह बात मुझे लज्जापूर्वक स्वीकार करनी ही होगी। किन्तु भीष्म ! जीवनभर ब्रह्मचर्य की भीषण प्रतिज्ञा करनेवाले तुम जैसे पुण्य-श्लोक महापुरुष में पुण्य-प्रकोप प्रज्वलित क्यों नहीं होता ?

"भाई दुर्योधन ! मैं समझता हूं कि एक दूसरी बात की ओर भी तुम्हें ध्यान देना चाहिए। तू पितामह और मुझपर युद्ध का आधार रखकर बैठा है। और इसमें सन्देह नहीं कि हम दोनों ही मन में धारण कर लें तो एक दिन में सारी पृथ्वी को अपने वश में कर सकते हैं। स्वयं देवराज इन्द्र तक को हटाना हो तो अवश्य हटा सकते हैं। किन्तु दुर्योधन ! यहां तो पाण्डवों से निपटना है, और उनमें भी पाण्डु-पुत्र अर्जुन के साथ। दुर्योधन ! तू अर्जुन को पहचानता नहीं है। तुझे तो यही प्रतीत होता है कि भीष्म और द्रोण को पाण्डवों के प्रति पक्षपात है, इसलिए ये लोग सदा इसी तरह की बातें किया करते हैं। निश्चय ही अर्जुन के प्रति मेरे मन में पक्षपात अवश्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अर्जुन-जैसे शिष्य के प्रति जिस गुरु के मन में पक्षपात न हो, वह गुरु-विद्या का सच्चा उपासक नहीं हो सकता। किन्तु दुर्योधन ! यह केवल पक्षपात का ही प्रश्न नहीं है। भीष्म और मैं, दोनों ही वृद्ध हैं, इसलिए युवक अर्जुन के मुकाबले और दृढ़ता की हम बराबरी

नहीं कर सकेंगे। जिस समय अर्जुन हम सबको ललकारकर अकेला ही विराट के युद्ध-क्षेत्र पर चला गया था, उस समय तू इस बात का अनुभव कर चुका है।

" इसके सिवा यह वृद्धावस्था तथा जवानी केवल आयु की ही नहीं है। सारी शस्त्र-विद्या में मैं और पितामह वृद्ध हैं और अर्जुन जवान। आज से वीस वर्ष पहले हम सचमुच ही जवान थे। उस समय के नये-नये शस्त्रास्त्रों तथा उनकी कला हमसे अपरिचित नहीं थी। किन्तु आज इस युग के नवीनतम शस्त्रास्त्रों का हमें वहुत कम परिचय है। हमारी शस्त्र-विद्या सामर्थ्यवान् तो है, लेकिन जितनी समर्थ है उतनी आधुनिक नहीं। अर्जुन तो शस्त्र-विद्या के आधुनिक आचार्य पशुपति से नई विद्या सीखकर आया है, इसलिए यह निश्चय है कि उसकी जवानी और शस्त्रास्त्र विद्या की नवीनतम शोधों का उसका ज्ञान मुझे और भीष्म को उसके मुकावले में टिकने न देगा। विश्व के ब्राह्मण यह वात आरम्भ से ही कहते आये हैं कि जो विद्या पुरानी पड़ गई है और जिसे नित्य निरन्तर होती रहनेवाली नवीनताओं का पुट नहीं लगा है, वह चाहे जितनी समर्थ हो तो भी नवीन युग के सामने टिक नहीं सकती।

" पितामह! श्रीकृष्ण हमारे आज के युग-पुरुष हैं। अपने वर्त्तमान् युग के भीतरी-वाहरी प्रवाह, इस युग का समस्त जीवन श्रीकृष्ण के जीवन में मूर्त्तरूप होता दिखाई देता है। और आज यदि कोई एक पुरुष सम्पूर्ण भारत का जीवन गढ़ रहा है तो वह यह श्रीकृष्ण ही है। ऐसा युग-पुरुष सारथी वनकर जिस रथ को गतिवान् करे, उस रथ को रोकने की शक्ति किसमें है? भीष्म! आपका और मेरा वल चाहे जितना हो, फिर भी हम अर्जुन के रथ

के सामने टिक न सकेंगे। अर्जुन नवयुवक है, उसकी विद्या सर्वथा नूतन है, उसके पक्ष में धर्म है, और भारत के सारे समाज की नाड़ी की गति क्या बताती है यह जानकर देखो तो प्रतीत होगा कि समाज के सम्पूर्ण हृदय का अन्तर-प्रवाह पाण्डवों के पक्ष में ही जाता है।

" पितामह ! हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि पाण्डव युद्ध-क्षेत्र में उतरते हैं, तो अपने निज की खातिर। इस युद्ध के पीछे उनके अन्तरतम की बात है, उनके अपने दुःखों की स्मृति है और है राज्य के अपने निज के हिस्से की कसक। मेरे और आपके इस युद्ध में भाग लेने के पीछे भी क्या ऐसे कोई प्रबल कारण है ? दुर्योधन और कौरव-बन्धुओं के मन में सच्ची कसक है, किन्तु अपने मन में वह बात नहीं। इस हदतक कौरव-सेना दुर्बल रहेगी। अर्जुन को हमपर तीर चलाते समय जो जोश आ सकता है वह हमको नहीं आ सकता। अपने मन में तो अर्जुन के प्रति सहानुभूति होगी, इसलिए सम्भव है कि अपने हाथ ढीले पड़ जायं, और ढीले न पड़ें तो भी हम कोरे कर्त्तव्य-पालन की दृष्टि से लड़ेंगे, आन्तरिक उत्साह से नहीं।

" दुर्योधन! अर्जुन के सब साधन संसार की सर्वश्रेष्ठ शस्त्रास्त्रशाला के बने हुए हैं। उसका रथ, रथ पर उड़ती हुई पताका, उसका गाण्डीव, उसके तीर और उसके शस्त्र सभी वरुणदेव की प्रयोगशाला में तैयार हुए हैं और उनके निर्माण में जरा भी कोर-कसर नहीं रही है। भीष्म के या मेरे पास इन साधनों की समानता करनेवाले कोई साधन नहीं हैं।

" पितामह! मैं बहुत-कुछ कह गया। मुझे ऐसा लगता है कि युद्ध के नक्शों पर विचार होने से पहले इन बातों पर विचार

होकर अव भी यदि काल की इच्छा हो और युद्ध वन्द हो सके तो बड़ा अच्छा हो।"

यह कहकर द्रोण अपने आसन पर बैठ गये। इसके वाद तुरन्त ही दुर्योधन उठा और कौरवों की तालियों की गड़गड़ाहट के वीच उसने कहना शुरू किया, "पितामह! द्रोणाचार्य ने जो कुछ कहा, वह मैंने सुना है। जो लोग बूढ़े हो जाते हैं, वे किसी भी कार्य में प्रेरणा देने के बदले निरर्थक दोष निकालने में ही अपना समय गंवाते हैं। इस दृष्टि से आचार्य सचमुच वृद्ध हो गए हैं। मैं तो अपनी वात संक्षेप में ही कह देना चाहता हूं। दुर्योधन ने जो युद्ध रचा है, वह वन्द नहीं हो सकता। आप और आचार्य चाहे उसमें भाग न लें और दूसरे राजा भी मेरा साथ छोड़ दें तो भी मैं, शकुनि, दुःशासन और कर्ण ये चारों जने लड़ लेंगे। पितामह! लम्वी-लम्वी वातें तो अव वहुत हो चुकी हैं। उनसे मेरा कोई मतलव नहीं। अब आप और आचार्य मिलकर निश्चय कर लें, जिससे युद्ध का विचार आगे बढ़ सके। आचार्य-जैसे ब्राह्मण विद्या सम्वन्धी उपदेश देने के लिए अच्छे होते हैं; किन्तु जीवन में उस विद्या का यथाविधि उपयोग करने का क्षात्र-वल ये विचारे कहां से लावें?"

आचार्य ने व्यथित होकर कहा "कुमार! लड़ना ही हुआ तो द्रोण तुम्हारे साथ ही है; किन्तु अपने विचार तो मुझे तुम सव के सामने रखने ही चाहिए।"

"अवश्य। मेरे साथ रहना न रहना यह आपकी न्यायवुद्धि पर निर्भर है। किन्तु निरी मन्त्रणा के समय तो आचार्य से और ही आशा रक्खी थी, लेकिन खैर, आपको पहचानने में मैंने भूल की हो तो उसका फल भी मुझे ही भोगना चाहिए। पितामह! मैं अपने

सबकी तरफ की कहता हूं कि युद्ध का जो दांव हमने फेंका, वह फेंका जा चुका है। मैं समझता हूं कि आप हमारे साथ हैं। हस्तिनापुर के सिंहासन का भीष्म के बल पर इतना तो अधिकार है ही। अब पितामह अपना निर्णय प्रकट करें और अपनी मन्त्रणा आगे शुरू हो।"

"द्रोणाचार्य ! आप जो कहते हैं वह सब यथार्थ है।" पितामह ने कहा, "दुर्योधन समझ जाय तो अब भी क्षत्रियों का विनाश टल सकता है। लेकिन दुर्योधन समझने का नहीं। इसलिए अपने से जितना हो सके उतना कर देना चाहिए। हम युद्ध में सम्मिलित हुए तो युद्ध आरम्भ होने के बाद भी मौका पाकर समझौता करा सकेंगे। इसलिए युद्ध के ब्योरे में अपने ज्ञान और अनुभव का योग दो।"

भीष्म के वचन सुनकर कौरव हर्षित हो उठे। इसलिए द्रोण खड़े होकर बोले, "पितामह ! जैसी काल की इच्छा। दुर्योधन ! समझ में नहीं आता कि भीष्म पितामह के साथ तेरी पीठ पर खड़े रहने के लिए मुझे कौन धकेल रहा है। लेकिन कुछ भी हो, विनाश के गहरे-से गहरे गढ़े में गिरने में भीष्म-जैसे पितामह के साथ रहना हो तो यह भी जीवन का एक सौभाग्य ही है !"

"आचार्य ! यह आपके योग्य ही है।"

भीष्म ने पूर्ति की और इसके बाद सारी सभा युद्ध के नक्शों पर विचार करने में संलग्न हो गई।

५ / दुर्योधन के वाक्-प्रहार

द्रोणाचार्य को सेनापति हुए आज चार दिन हो चुके हैं। युद्ध का चौदहवां दिन होने के कारण कौरवों के लिए वह एक काल-दिवस था। इस चौदहवें दिन की शाम को अर्जुन ने सिन्धुराज जयद्रथ का वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी। दुःशला का पति होने के कारण जयद्रथ दुर्योधन के सगे भाई के समान था। अभी अगले ही दिन जिस समय अभिमन्यु कौरवों का चक्रव्यूह तोड़कर भीतर घुस गया था उस समय उसके पीछे घुसती हुई सारी पाण्डव-सेना को अकेले जयद्रथ ने रोक रक्खा था और भीम, धृष्टद्युम्न आदि सिरतोड़ प्रयत्न करके भी उसे डिगा न सके थे। उसी जयद्रथ को अर्जुन ने धराशायी कर दिया। तब कौरव-सेना में भगदड़ मची; तुरन्त ही सम्भलकर क्रोध के आवेश में वापस झपटी। सामान्यतया भारत का यह युद्ध दिन-भर जारी रहता और सूर्यास्त के बाद दोनों सेनाएं अपने-अपने शिविर (छावनी) में वापस लौटतीं। इस युद्ध के नियम के अनुसार दोनों सेनाएं अपनी शत्रुता को एक ओर रखकर भाई-भाई के रूप में मिल भी सकती थीं। किन्तु आज तो सूर्यास्त के बाद भी युद्ध जारी रहा और अधिक रात बीते तक लड़ने के बाद थके हुए योद्धाओं ने अधिकतर नींद भी वहीं निकाल ली। आज के रात्रि-युद्ध में भीमसेन का पुत्र घटोत्कच कौरवों की सेना में खूब हलचल मचाने के बाद अन्त में कर्ण के हाथों मारा गया।

युद्ध-समाप्ति के बाद महाराज दुर्योधन रथ में बैठकर आचार्य के तम्बू में आये। आज उनके मन में चैन नहीं था।

"महाराज, इस समय कैसे? विश्राम का जो थोड़ा-बहुत

समय मिला है, वह तो ले लिया होता। अभी भोर हो जायगा।" आचार्य ने कहा।

"आचार्य ! इस काल-रात्रि में से दुर्योधन के लिए, प्रभात की एक भी किरण चमकेगी, मुझे यह प्रतीत नहीं होता।" दुर्योधन बोला, "द्रोणगुरु ! मैं तो अब जीवन से तंग आ गया हूं। विजय की कैसी-कैसी आशा करके मैंने आपको सेनापति बनाया था ! और गुरुदेव ! आप सेनापति हुए उस समय मैंने जो मांगा था उसकी याद है ? न हो तो सुनिये, मेरी मांग थी युधिष्ठिर को जीवित पकड़कर सौंपने की !"

"हां, तुमने यह मांग की थी और मैंने उसका जवाब भी दिया था।"

"आपकी शर्त के अनुसार मैंने अर्जुन को युद्ध से दूर रक्खा है। अर्जुन संग्राम में हो तो युधिष्ठिर का पकड़ा जाना सम्भव नहीं हो सकता। मैंने इसके लिए त्रिगर्त के युद्ध की अलग ही योजना की है, इसलिए अर्जुन तो नित्य वहां जाता है। फिर भी आप युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सके। आचार्य, सुनते हैं आप ?"

"सुनता हूं राजन ! सुनता हूं। और अन्तर में गहरी व्यथा अनुभव करता हूं। तू मुझ-जैसे को जिम्मेदारी के काम सौंप सकता है, लेकिन इन कामों को सौंपने के साथ-साथ जो विश्वास रखना चाहिए वह नहीं रख सकता। इसके विपरीत शंका की ही दृष्टि से देखा करता है। इसलिए तेरा जिम्मेदारी सौंपना सार्थक नहीं होता और हमारा उत्साह भी धूल में मिल जाता है। तेरे ऐसे शंकाशील स्वभाव से भीष्म भी तंग आ गये और अन्त में मारे जाने पर ही छुटकारा पाया। यह ठीक है कि मैं युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सका। लेकिन उन्हें पकड़ना कितना कठिन

काम है, इसका भी तुझे कुछ ध्यान है ?"

"ध्यान तो है, लेकिन पाण्डवों के प्रति अपने पक्षपात के वशीभूत होकर जितना प्रयत्न किया जा सकता था, उतना प्रयत्न आपने नहीं किया।" दुर्योधन ने तुनककर कहा, "देखिए, अभिमन्यु आपका चक्रव्यूह तोड़कर अन्दर प्रवेश करने के लिए आगे बढ़ा, उस समय आप चाहते तो उसे रोक सकते थे। किन्तु अभिमन्यु तो ठहरा अर्जुन का पुत्र, इसलिए पूंजी के ब्याज को तरह आपको प्रेम था! उसे आप किस तरह रोकते ?"

"अरे मूर्ख! कौरव-सेना का सेनापति-पद देने के कारण ही तू इस प्रकार की भाषा बोल रहा है ? दुर्योधन! तेरी विजय ही असम्भव है।" आचार्य ने आवेश में कहा।

"आचार्य! क्रोधित क्यों होते हैं। मेरे मन का समाधान कर दीजिए, बस इतना ही तो चाहिए। मुझे जैसा प्रतीत होता है, वही मैं कहता हूं। आपसे कहना ही यदि आपको अच्छा न लगता हो तो फिर मैं अपने मनपर अंकुश लगाकर बैठ जाऊंगा और कोई बात मुंह से निकालूंगा ही नहीं।"

"दुर्योधन! अभिमन्यु तो सिंह-शावक है, श्रीकृष्ण का भानजा और अर्जुन का पुत्र है। और गर्भ में ही उसने यह विद्या ग्रहण की थी। यह तो तेरे भाग्य की बात है कि व्यूह से बाहर निकलने की कला वह सीख नहीं सका, अन्यथा हम सबको लेने के देने पड़ जाते। और फिर जरा सोच तो सही, उस अकेले ने हम इतनों को किस तरह के खेल खिलाये।"

"आचार्य! सिन्धुराज जयद्रथ ने सबको रोका। इसलिए उसमें सफल भी हुए।"

"ठीक है। फिर भी दुर्योधन! एक बात तो मेरे मन में अब

भी खटकती रहती है। अभिमन्यु का वध करने में हमने युद्ध-विद्या के सारे नियम और धर्म को एक ओर उठाकर रख दिया। अकेले अभिमन्यु को मारने के लिए हम छः महारथी इकट्ठे हुए! अभिमन्यु के पास न तो रथ था, न घोड़ा, और न सारथी। और तो और, आक्रमण का जवाव देने के लिए उस समय उसको धनुष-बाण अथवा ढाल-तलवार तक प्राप्त न थी। क्या ऐसे साधन-विहीन और निहत्थे व्यक्ति को मारकर हमने धार्मिक विजय प्राप्त की है ? फिर भी राजन् ! तुम्हारी खातिर मैंने यह सब कुछ किया।"

"आचार्य ! आपने जयद्रथ की रक्षा करने की बात कहकर उसे सिन्ध जाने से रोका और फिर भी अन्त में उसे वचा तो नहीं सके !" दुर्योधन ने ताना मारते हुए कहा।

"दुर्योधन ! जिसकी मृत्यु आ पहुंची हो उसे वचाने की शक्ति न तो द्रोण में है, न किसी और में। अर्जुन और श्रीकृष्ण ने जिसको काल-कवलित करने का निश्चय कर लिया हो उसे बचाने में मैं किसीको समर्थ नहीं पाता। दुर्योधन ! तुम्हें समझ लेना चाहिए कि जयद्रथ ने जिस दिन द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली, उसी दिन से वह मरा हुआ ही था।"

"गुरुवर द्रोण ! अर्जुन की अनुपस्थिति में युधिष्ठिर को पकड़ लेना सरल था। अकेला सात्यकि उनकी रक्षा कर रहा था। उसे भी आपने नहीं रोका। ऐसी दशा में युधिष्ठिर को पकड़ने की वात तो अव समाप्त हुई ही समझनी चाहिए। उनके पकड़े जाने पर ही मैंने अपनी सारी बाजी लगाई थी, वह अव सारी पलट गई।"

"दुर्योधन, दुर्योधन ! किसने क्या-क्या नहीं किया, यह

गिनाकर दोष निकालना तो बड़ा आसान काम है; लेकिन जिन महापुरुषों के हाथ में समाज-संचालन के बड़े-बड़े तन्त्र होते हैं उन्हें तो किसने क्या-क्या किया, यह तोलकर उसकी कदर करनी चाहिए। दूसरों के दोष ढूंढ़ने की तेरी यह बुद्धि ही तेरे हाथ में आया हुआ राज्य गुमावेगी और तेरे अपने आदमी ही तेरा हृदय से कभी साथ न देंगे। अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु समाप्त हुआ, महाराज द्रुपद का अन्त हुआ, महाराज विराट् मारे गये और सारी सेना को हिला डालनेवाला वह घटोत्कच भी खत्म हुआ। लेकिन यह सब तेरी किसी गिनती में ही नहीं आता!"

"आचार्य! निरर्थक-सी बातों के पूरा हो जाने पर भी जबतक तथ्य की कोई एक बात भी न हो जाय तबतक मुझ-जैसे को सन्तोष कैसे हो सकता है?"

"दुर्योधन! बहुत हो चुका, अब चुप रह। जा, तुझे मैं वचन देता हूं कि द्रोण कल पांचालों का वध करके ही रहेगा। दुर्योधन! मन में तो यह आता है कि तुझ जैसे कृतघ्न की सेवा करने के बजाय इन सारे शस्त्रास्त्रों को तिलांजलि देकर किसी जंगल में चला जाऊं और वहां और कुछ न हो सके तो हरिणों को घास खिलाते-खिलाते ही मृत्यु का आलिंगन करूं। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि द्रोण के भाग्य में यह नहीं बदा है। जब से अकेले एक अश्वत्थामा की खातिर अपनी गरीब झोंपड़ी छोड़कर बाहर निकला हूं तब से उस झोंपड़ी के लिए बराबर तरसता रहा हूं, लेकिन वह झोंपड़ी निरन्तर दूर-ही-दूर होती गई है। और दुर्योधन! इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूं वह मैं ही नहीं, मेरा काल बोल रहा है। जा, कल सुबह द्रोण को देख लेना।

" मेरे सिर का यह सेनापति का ताज अब मुझे चुभने लगा है;

यह कवच भाररूप प्रतीत होने लगा है और हाथ इन सब शस्त्रा-स्त्रों को छूना नहीं चाहते। आज तेरे वचनों से घायल होकर मुझे अग्निवेश के आश्रम के दिन याद आ रहे हैं। अच्छा दुर्योधन अब जा और निश्चय रख कि कल द्रोण तेरे कहने योग्य कोई बात बाकी न रख छोड़ेगा। इससे अधिक मेरी आंखों के सामने अब और कुछ दिखाई नहीं देता। इसलिए कह नहीं सकता।''

यह कहकर द्रोण चुप हो गये और दुर्योधन प्रसन्न होता हुआ डेरे से विदा हुआ।

६ / द्रोण-वध

कुरुक्षेत्र के मैदान में पन्द्रहवां दिन हुआ और द्रोण कौरव-सेना के मोर्चे पर चले। युद्ध को चलते हुए चौदह दिन बीत चुके थे और सेना सारी-की-सारी समाप्त होती जा रही थी, किन्तु इतने पर भी युद्ध का अन्त दिखाई नहीं पड़ रहा था। दुर्योधन के मन में अत्यन्त उद्विग्नता रहती थी। इसलिए आचार्य अपने मन में यह निश्चय करके निकले थे कि आज या तो वह स्वयं समाप्त हो जायंगे या पांचालों को समाप्त करके रहेंगे।

युद्ध आरम्भ हुआ और उसके साथ ही द्रोण की घोर संहार-क्रिया भी आरम्भ हुई। पाण्डव योद्धा एक-के-बाद-एक धरा-शायी होने लगे। सारे युद्ध-क्षेत्र में रथों के साज-बाज, टूटे हुए पहिये, हाथी-घोड़ों के सिर और धड़, योद्धाओं के कटे हुए हाथ, पैर, धड़ और सिर चारों ओर फैलने लगे। आचार्य द्रोण पाण्डव-सेना को आज इस तरह अपने सपाटे में ले रहे थे, मानो शिशिर ऋतु के अन्त में विंध्याचल के किसी जंगल में लगा हुआ दावा-

नल वहां के घास, वृक्ष, पशु और पक्षियों को अपने सपाटे में ले रहा हो। उनका रूप भी आज प्रलय-काल की अग्नि के समान प्रतीत होता था। रथ में बैठकर सारे युद्ध-क्षेत्र में घूमते हुए वे किस समय तरकश में से वाण निकालते हैं, किस समय वे धनुष पर चढ़ाते हैं, कब धनुष की प्रत्यंचा खींचते हैं और कब वाण छोड़ते हैं, यह कोई समझ नहीं पा रहा था।

द्रोण के हाथों इस संहार को देखकर पाण्डव आश्चर्य-चकित रह गये। इसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन ! अपने आचार्य को देख। ऐसा प्रतीत होता है, मानो आज साक्षात् धनुर्वेद मनुष्यरूप धारण करके युद्ध-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ हो। द्रोण इस समय द्रोण नहीं, साक्षात् काल-से दिखाई दे रहे हैं।"

"निःसन्देह आज आचार्य अपने वास्तविक रूप में चमके हैं। इस समय उनके सामने सेना किस तरह टिक सकती है ?" अर्जुन ने कहा।

"टिकने की बात ही कहां है ! यदि आधा दिन भी द्रोण इसी तरह लड़ते रहे तो तुम सबको राज मुकुट पहनने की आशा छोड़ देनी होगी। इसलिए अर्जुन, अब विचार करने का समय नहीं है। जल्दी ही ऐसा उपाय होना चाहिए, जिससे कि द्रोण हथियार छोड़ बैठें। यदि उनके कानों में, 'अश्वत्थामा मारा गया' ये शब्द पड़ जायं तो निश्चय ही वे हथियार छोड़ देंगे। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।"

श्रीकृष्ण का कहना तो ठीक था, लेकिन अर्जुन को यह मार्ग उचित प्रतीत नहीं हुआ। जिन आचार्य से जीवन की अत्यन्त दुर्लभ विद्या प्राप्त की, जिनकी कृपा से सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी की पदवी प्राप्त की और नित्य जिनके चरणों में प्रणाम करके युद्ध

को आरम्भ करता था, उन्हीं आचार्य को इस तरह छल से मारना उसे नहीं भाया।

किन्तु भीम श्रीकृष्ण की बात सुन चुका था। इसलिए उसने मन में तय कर लिया। पाण्डव-सेना में अश्वत्थामा नाम का एक हाथी था, तुरंत ही उसे मारकर द्रोण के रथ के निकट पहुंच जोर से चिल्ला उठा, "अश्वत्थामा मारा गया, अश्वत्थामा मारा गया।"

द्रोण के कानों में 'अश्वत्थामा मारा गया' इन शब्दों की गूंज पड़ी, इसलिए एक क्षण के लिए तो वह स्तब्ध हो गये; किन्तु तुरन्त ही सावधान हो गये और सोचने लगे कि 'अश्वत्थामा इस तरह मर कैसे सकता है? भीमसेन का क्या भरोसा?' उनका मन क्षुब्ध हो उठा था, इस ख्याल के आते ही वह फिर स्थिर हो गया और उन्होंने पहले से भी अधिक वेग से संहार-कार्य शुरू कर दिया। आज पांचालों को समाप्त कर देने का उनका संकल्प था। इसलिए उन्होंने अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, जिससे तुरन्त ही अनेक शस्त्रास्त्र एकसाथ पाण्डव-सेना पर टूट पड़े।

लेकिन ब्रह्मास्त्रके छूटते ही द्रोण की आंखों के सामने ऋषि-मुनियों की मूर्तियां आकर खड़ी हो गईं और उनसे कहने लगीं, "भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य! आपने आज यह क्या किया? ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किस अवस्था में होता है, अपने इस आवेश में आप यह तक भूल गये? जिन शत्रुओं के विरुद्ध ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना हो उनके अधिकार का आपने विचार तक न किया? मुनि अग्निवेश के शिष्य द्रोण! क्या आपको हमें यह बताने की भी आवश्यकता है कि विद्या संसार के कल्याण के लिए है, संहार के लिए नहीं। आप तो ब्राह्मण-जीवन के स्वप्नों का पोषण करने-

वाले ठहरे, तिसपर भी आज अस्त्र-विद्या का ऐसा दुरुपयोग कर रहे हैं, जैसा कोई आर्य क्षत्रिय भी करना पसन्द न करेगा! आचार्य! जरा सोचो! जरा अपने अन्तर में 'दृष्टि करके देखो। आपकी तो ऋषि-मुनियों के संघ में ही शोभा है, जंगली-पशुओं की तरह एक-दूसरे को फाड़ खानेवाले इन योद्धाओं के बीच आप नहीं शोभते। लोक-संहार का यह घोर कृत्य आपको शोभा नहीं देता। इसलिए अपने ब्रह्मास्त्र को वापस लो और युद्ध के इस दारुण कृत्य से निवृत्त होओ।''

ऋषि-मुनियों के शब्द मानो वायु से झंकृत होकर द्रोण के कानों में पहुंच रहे हों, इस प्रकार द्रोण ने उन्हें सुना और गहरी निःश्वास ली। पिता भरद्वाज और गुरु अग्निवेश का ब्राह्मण-जीवन उनकी आंख के सामने मूर्त्तरूप धारण करके खड़ा हुआ दिखाई देने लगा। जिस दिन द्रुपद के पास जाने के लिए घर से निकले थे, उस दिन की याद हो आई और उसके बाद से वह किस तरह ब्राह्मण-जीवन से दूर-से-दूर हटते गए, इसके अनेक चित्र उनके स्मृति-पटल पर आने लगे। उनके शरीर से पसीना बहने लगा और हाथ धीमे पड़ गये।

इसी बीच भीमसेन उनके रथ के पास पहुंचकर कहने लगा, "द्रोणाचार्य! धिक्कार है आपको! आपका प्यारे-से-प्यारा पुत्र अश्वत्थामा मारा गया और फिर भी आप शस्त्र नहीं छोड़ते! गुरुदेव ब्राह्मण होकर भी आप इन शस्त्रास्त्रों से चिपटे हुए हैं? अश्वत्थामा तो गया। यदि सचमुच ही वह आपको प्यारा था तो अब लड़ना छोड़िए और अपने प्यारे पुत्र की याद में भगवान् का स्मरण कर कृतार्थ होइए।''

ऋषि-मुनियों के वचनों से शिथिल हुए द्रोण भीम के ये शब्द

सुनकर और भी शिथिल हो गए। 'क्या सचमुच मेरा अश्व-त्थामा मारा गया ? क्या भीम सच कह रहा है ? वह झूठ कहे भी क्यों ? तब क्या मेरा अश्वत्थामा मारा गया ? पुत्र ! तुझे अपने इस वृद्ध पिता पर भी दया नहीं आई ? किन्तु नहीं। अश्व-त्थामा इस तरह मेरे पहले मर नहीं सकता। फिर भी भीम कहता है कि वह मर गया। लाओ, जरा युधिष्ठिर से पूछूं। युधिष्ठिर अजातशत्रु हैं, अखिल विश्व का साम्राज्य मिलने पर भी वे असत्य भाषण न करेंगे। इसलिए उनसे पूछना ठीक होगा।' यह सोचते हुए वह युधिष्ठिर के पास पहुंचे और कहने लगे, "युधिष्ठिर ! भीमसेन कहता है कि अश्वत्थामा मारा गया। तू मेरा शिष्य है और संसार तुझे अजातशत्रु कहता है। अतः मैं तुझसे जानना चाहता हूं कि सच बात क्या है ?"

आचार्य का प्रश्न सुनकर युधिष्ठिर उलझन में पड़ गये। उनके सिर पर बड़ा धर्म-संकट आ पड़ा। एक ओर द्रोण सूखी घास को जला डालनेवाले दावानल की भांति सारी पाण्डव-सेना को जलाये डाल रहे थे और आधे दिन भी उनका यह संहार-कार्य जारी रहता तो सारी पाण्डव-सेना के समाप्त हो जाने की स्थिति आ सकती थी। इसलिए युधिष्ठिर के सामने यह प्रश्न था कि उन्हें इस संहार-कार्य से किस तरह रोका जाय ? अपने लिए प्राण-त्याग करने के लिए आये हुए योद्धाओं की रक्षा वे न करें तो और कौन करे ? दूसरी ओर उनके सामने प्रश्न था अपने प्रिय सत्य की रक्षा का—शरीर से ही प्रिय नहीं, प्राणों से भी अधिक प्रिय; भाई-बन्धुओं से ही नहीं, हस्तिनापुर के राज्य से ही नहीं, इन्द्र के इन्द्रासन और अखिल विश्व के साम्राज्य से भी अधिक प्रिय सत्य की रक्षा का। क्या ऐसे प्रिय सत्य को छोड़ा

जाय ? उनके हृदय में भयंकर मन्थन शुरू हुआ ।

इतने में ही श्रीकृष्ण ने उनके पास पहुंचकर धीमे से कहा, "महाराज युधिष्ठिर, आपको मालूम होगा कि अभी भीम अश्वत्थामा नामक हाथी को मार चुका है। अतः आप यह तो कह ही सकते हैं कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोणाचार्य आज किस तरह लड़ रहे हैं, यदि थोड़ी देर उसी तरह और लड़ते रहे तो आपको हस्तिनापुर के राज्य की आशा छोड़ देनी होगी। मैं यह समझ सकता हूं कि द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा नहीं मारा गया। इसलिए आपको यह असत्य भाषण करते हुए असमंजस हो रहा है; किन्तु आपको युद्ध में विजय प्राप्त कर हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठना हो और इससे भी अधिक यदि आपको अपने लिए प्राणों का विसर्जन करने के लिए आये हुए इन योद्धाओं के प्राणों की भी परवा हो तो 'अश्वत्थामा मारा गया' यह कहे बिना आपकी गति नहीं है। फिर जैसा आप उचित समझें करें।"

महाराज युधिष्ठिर कभी के इधर-उधर झुकने लगे थे। सत्य और सांसारिक लाभों के बीच उनकी अन्तरात्मा कभी की झोंके खाने लगी थी। इसलिए श्रीकृष्ण के वचन सुनकर उनका हृदय और भी आगे बढ़ा और उनके मुंह से निकल गया "अश्वत्थामा मारा गया।"

किसी जीवित व्यक्ति पर बिजली गिरने पर जिस तरह निमिष-मात्र में ही उसकी स्थिति बदल जाती है उसी तरह द्रोण के कानों में युधिष्ठिर के शब्द पड़ते ही उनकी स्थिति वदल गई ——उनके हाथों से शस्त्र छूटकर नीचे गिर पड़े और सारी इन्द्रियां शिथिल हो गईं। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उनका प्राण गहराई में नीचे उतर गया हो, और वे मूढ़ की तरह रथ में बैठे रह

गये। भरद्वाज के पुत्र, अग्निवेश के शिष्य, कृपी के प्रिय पति, द्रुपद के आरम्भ के मित्र और बाद के कट्टर शत्रु, पाण्डव-कौरवों के आचार्य, शस्त्रास्त्र-विद्या के मूर्तिमान् अवतार और अश्वत्थामा के लिए जीवन धारण कर रहने वाले द्रोणाचार्य को इस स्थिति में देखकर द्रुपद का पुत्र और पांचाली का भाई धृष्टद्युम्न, जो द्रोण के वध के लिए ही महाकुण्ड से उत्पन्न हुआ था, तत्काल उनके रथ पर जा चढ़ा, उनके सारथी को मार दिया और दूसरे ही क्षण उनके सिर के बाल पकड़कर सिर धड़ से अलग कर दिया और जोरों से जयघोष किया।

युद्ध के दसवें दिन पितामह मारे गये, पन्द्रवें दिन द्रोणाचार्य का वध हुआ और उसके साथ ही दुर्योधन की विजय की आशा भी टूट गई।

गुरुपुत्र अश्वत्थामा

१ / संहार की प्रतिज्ञा

द्रोणाचार्य का वध होते ही सारी कौरव-सेना में हाहाकार मच गया। द्रोण एक प्रकार से धनुर्वेद की साक्षात् मूर्ति थे; क्षात्र तेज के मूर्तिमान् अवतार थे; शत्रु के लिए स्वयं काल-रूप थे; वह चाहते तो कुछ क्षणों में ही पाण्डव-सेना को ठिकाने लगा देते और निमिष-मात्र में ही शत्रु को परास्त कर दुर्योधन को विजयछत्र पहना देते। पांचालकुमार धृष्टद्युम्न ने उन्हीं द्रोणाचार्य का सिर धड़ से अलग कर दिया, इस समाचार से कौरवों के हौसले पस्त हो गये और सब अपनी-अपनी जान बचाने के लिए भागने लगे। कर्ण अपनी सेना लेकर युद्ध छोड़ गया; शकुनि ने भी अपना रथ छावनी की तरफ बढ़ा दिया; दुःशासन हक्का-बक्का होकर बड़े भाई दुर्योधन को ढूंढ़ने लगा; अनेक सैनिक अपने-अपने रथ और हाथी-घोड़ों पर से उतर-उतरकर भाग गये। अनेक भयभीत होकर भागे, तो बहुत-से दूसरों को भागते देखकर भाग खड़े हुए। अमावस्या के भाटे के बाद समुद्र का पानी जिस तरह एक साथ उतरने लगता है, उसी तरह घड़ी-भर पहले शौर्य से उभरती हुई कौरव-सेना द्रोण का वध होते ही मैदान छोड़कर तेजी से अपनी छावनी की तरफ भागने लगी।

कौरव-सेना की इस भगदड़ की ओर अश्वत्थामा की नजर पड़ी। अभी तक वह उसके एक पार्श्व में रहकर शत्रुओं का

संहार कर रहा था। अपने पिता द्रोण के वध का उसे पता न था। आस-पास की भीड़ देखकर अधीर हो उठा और अपनी ओर आते हुए दुर्योधन को देखकर कहने लगा, "राजन्! यह कौरव-सेना इस तरह क्यों भागी जा रही है? पिता द्रोण के हाथ में शस्त्रास्त्रों के रहते सेना का इस तरह भागते जाना मैं सहन नहीं कर सकता।"

"अश्वत्थामा! कुछ समझ नहीं आता कि मैं तुमको इसका क्या उत्तर दूं! आज मैं दीन जैसा बन गया हूं। इसलिए, गुरु-पुत्र, तुमको तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तुम्हारे मामा कृपाचार्य ही देंगे।"

"राजन्! आपके हृदय पर आज कितना भार है, यह मैं अच्छी तरह समझता हूं। इसलिए जिस समाचार के कहने में आपकी जीभ नहीं खुल रही है, वह दुःखद समाचार मैं ही कड़ा हृदय करके अश्वत्थामा को सुनाता हूं।" कृपाचार्य ने धीमे स्वर में कहा।

"कौन-सा समाचार, मामा?"

"तेरे पिता द्रोण के वध का।"

अश्वत्थामा ने व्याकुल होकर पूछा, "मामा, क्या कहते हो! पिता द्रोण मारे गये?"

"हां, मारे तो गये ही, लेकिन वे इस तरह मारे गये जिससे सारे कौरव-सेना के हृदय में तीर-सा चुभ गया है।"

"सो किस तरह?"

"पांचाल-पुत्र धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया!"

"मामा, आपकी बात मेरी समझ में नहीं आती। पिता द्रोण के हाथ में शस्त्रास्त्र रहते स्वयं काल में भी इतनी शक्ति

नहीं कि उनकी तरफ नजर उठा सके।"

"अश्वत्थामा, तू सच कहता है। द्रोणाचार्य तो आज प्रातः से ही दावानल की भांति सारी पाण्डव-सेना को भस्मीभूत कर रहे थे। स्वयं श्रीकृष्ण को ऐसा लगने लगा था कि यदि द्रोण इसी तरह कुछ समय तक और लड़ते रहे तो सारी पाण्डव-सेना एक-दो दिन में ही समाप्त हो जायगी।"

"तव फिर ?"

"फिर क्या।" पाण्डवों की विजय के उत्सुक श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन, जरा आचार्य की ओर तो देख। प्रज्व-लित दावानल में जलनेवाले कीट-पतंगों की तरह अपने सैनिक आचार्य की तेजोग्नि में पड़कर मौत के मुंह में जा रहे हैं। आचार्य यदि आधा दिन भी इस तरह लड़ते रहे तो तुम पाण्डवों को विजय की आशा छोड़ देनी होगी।" कृपाचार्य ने जवाव दिया।

"श्रीकृष्ण ने ठीक ही कहा। लोग चाहे जो कुछ कहें, श्रीकृष्ण अपने इस युग के महापुरुष हैं। फिर क्या हुआ ?" अश्व-त्थामा बोला।

कृपाचार्य ने कहा, "इसके साथ ही श्रीकृष्ण ने कहा कि आचार्य के हाथ में शस्त्र रहने तक किसी की हिम्मत नहीं कि उनकी तरफ देख सके। उनके हाथ से शस्त्रास्त्र छुड़ाने हों तो ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे 'अश्वत्थामा की मृत्यु हो गई है' यह समाचार उनके कानों में पड़े।"

"लेकिन अश्वत्थामा तो अमर है।"

"किन्तु श्रीकृष्ण का कहना था कि अश्वत्थामा की मृत्यु के शब्द आचार्य के कान में पड़ते ही वे शस्त्रास्त्र छोड़ेंगे, और किसी उपाय से नहीं।"

"बहुत खूब !"

"लेकिन श्रीकृष्ण की यह बात अर्जुन को अच्छी नहीं लगी।"

"यह बात सव्यसाची अर्जुन के योग्य ही थी।"

"किन्तु भीमसेन पास ही था। उसने यह बात सुन ली और सुनते ही पास जाकर अश्वत्थामा नाम के एक हाथी को मारकर 'अश्वत्थामा मारा गया, अश्वत्थामा मारा गया' यह शोर मचा दिया।"

"मामाजी ! भीमसेन जैसे लोग जब इस तरह गड़बड़ी करते हैं तो बड़ी परेशानी हो जाती है। लेकिन परेशानी क्यों हो ?"

"इसका जवाब क्या दूं ? पर परेशानी हुई। भीमसेन का कोलाहल जब आचार्य के कानों में पड़ा तो उन्हें बहुत क्षोभ हुआ, फिर भी उनका संहार-कार्य जारी रहा।"

"पिताजी ऐसे शोर से कैसे घबरा गये ?"

"घबरा कैसे गये, उनका काल उन्हें बुला रहा था। भीमसेन ने उनके पास जाकर जोर से आवाज लगाई 'अश्वत्थामा मारा गया,' और पुत्र के मारे जाने पर भी लड़ते रहनेवाले आचार्य द्रोण को उसने धिक्कारा।"

"लेकिन पुत्र के जीवित होते हुए आचार्य को फटकार बतानेवाला भीम कौन होता है ?"

"जो हो, भीम की फटकार सुनकर आचार्य कुछ सहम गये और उसका कहना ठीक है या नहीं, इसका निश्चय करने के लिए वे युधिष्ठिर के पास गये।" कृपाचार्य ने बतलाया।

"सत्यवादी युधिष्ठिर के पास ?"

"हां।"

"फिर ?"

"आचार्य ने जब युधिष्ठिर से अश्वत्थामा के मारे जाने के सम्बन्ध में पूछा तब श्रीकृष्ण उनके पास ही थे। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की तरफ देखा और कभी स्वप्न में भी झूठ न बोलनेवाले कुंतीपुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का संकेत पाकर कह दिया, 'हां, अश्वत्थामा मारा गया'।"

"मामाजी युधिष्ठिर! झूठ बोले, यह तो गजब हो गया! कुरुक्षेत्र के युद्ध का परिणाम चाहे जो कुछ हो; साम्राज्य का मुकुट दुर्योधन के सिर पर रखा जाय अथवा युधिष्ठिर के; लेकिन युधिष्ठिर झूठ बोले इससे उनकी पराजय तो आज हो चुकी। बेचारे युधिष्ठिर! मेरे और भीमसेन-जैसों के जीवन में तो सरल और सीधा सत्य ढूंढ़ने से भी मुश्किल से मिलेगा; लेकिन वह तो आज ठेठ अन्तिम सीढ़ी पर पहुंचकर उससे फिसल पड़े खैर! फिर पिताजी का क्या हुआ ?"

"आचार्य ने युधिष्ठिर के शब्द सुनते ही हाथ से हथियार छोड़ दिये और आंख मूंदकर रथ पर बैठ गए!"

"शस्त्र छोड़ दिये ?"

"हां।"

"आह, पिताजी! आपने शस्त्र क्यों छोड़ दिये ? आपका प्रिय पुत्र तो यहां जीवित बैठा है।" अश्वत्थामा ने व्यथित हृदय से कहा।

"द्रोण के हाथ से हथियार रखते ही धृष्टद्युम्न रथ पर चढ़ दौड़ा और उनके बाल पकड़कर सिर धड़ से अलग कर दिया।"

पिता का सिर धृष्टद्युम्न ने काटा ? धृष्टद्युम्न ने ! पांचाल-

कुमार ! आज तूने गुरु-हत्या का महापाप किया। किन्तु क्या तुझे पता नहीं कि अश्वत्थामा अभी जीता है। पापी कहीं के ! तूने अधमतापूर्वक पिता की हत्या की और अर्जुन यह सब देखता रहा ? पाण्डव भी देखते रहे ? श्रीकृष्ण ने भी उसे न रोका ?'' अश्वत्थामा आवेश में बोला।

"अर्जुन तो जोर-जोर से चिल्लाता रहा कि गुरु का वध न करो। इन्हें जीवित ही पकड़ लो।''

"इसपर भी उस नीच पांचालकुमार ने उनका वध कर डाला ? धृष्टद्युम्न ! तुझे इस बात का जरा भी खयाल न आया कि द्रोण के एक सिर के वदले कितने पाण्डवों के सिर तराजू में तौलने पड़ेंगे ? द्रुपद के छोकरे ! याद रख, द्रोण के भी एक लड़का है और वह भी पिता का वदला लेना जानता है।''

यह कहता हुआ अश्वत्थामा क्रोध में भरकर इधर-उधर टहलने लगा।

"अश्वत्थामा ! शान्त हो।'' कृपाचार्य ने उसे समझाने की चेष्टा करते हुए कहा।

"मामा ! पिता की मृत्यु के समाचार ने मुझे व्याकुल कर दिया है। इस समय मैं अपने आपे में नहीं हूं। मेरी आंखें धृष्टद्युम्न को ताक रही हैं। युद्धस्थल में उसे देखकर मैं क्या कर डालूंगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।'' अश्वत्थामा ने रोषपूर्वक कहा।

"अश्वत्थामा ! इतनी उतावली न कर। तेरे रोम-रोम में आग वरस रही है, यह मैं समझ सकता हूं। लेकिन जरा उसे शान्त कर। द्रोण तो अब स्वर्ग को सिधारे। पर तू मन को विह्वल न कर। यह समय जल्दवाजी और शोक का नहीं है।''

कृपाचार्य उसे शान्त करने का प्रयत्न करते हुए बोले।

"मामा ! पिता मुझे छोड़कर स्वर्ग-धाम को चले गये, इस विचार-मात्र से ही मैं विकल हो उठता हूं। पिता मेरे जन्मकाल से ही मेरे लिए जिये; मेरे लिए हस्तिनापुर की खाक छानी; मेरे लिए दुर्योधन का साथ दिया और अन्त में मेरे लिए ही उन्होंने प्राण त्यागे ! हा, पिता ! आपके ऋण से मैं किस प्रकार उऋण हो सकूंगा।" अश्वत्थामा ने विलाप करते हुए कहा।

"धृष्टद्युम्न का वध करके तुम उस ऋण से उऋण हो सकते हो।"

"इतना ही काफी नहीं है, मामा। द्रोण और पांचाल वंशों के बीच परम्परा से वैर चला आ रहा है। आज धृष्टद्युम्न ने पिता का वध करके इस जलती हुई अग्नि में फूंक मारकर उसे और भी भड़काया है। अश्वत्थामा अकेले धृष्टद्युम्न का ही नहीं, सारे पांचाल-परिवार के सिर धड़ से जुदा करके ही अपनी आत्मा को तृप्त कर सकता है और उसका पितृ-तर्पण पूरा हो सकता है। अगर अश्वत्थामा यह न कर सका तो, मामा, तुम समझना कि अश्वत्थामा अश्वत्थामा नहीं।" अश्वत्थामा ने आवेश के साथ कहा।

"अश्वत्थामा, यह प्रतिज्ञा बड़ी कड़ी है। जरा विचारकर ही मुंह से शब्द निकालना।" दुर्योधन ने कहा।

"राजन् पिता ने तो मेरे लिए प्राण तक गवां दिये और मैं पांचालों का वध करने में सोच-विचार करूं ? राजन् ! मेरे लिए तो आश्चर्य की बात यही है कि इस प्रकार पिता का सिर काटनेवाले का सिर अभी धड़ से अलग नहीं हुआ ! मैं उसके लिए भी कटिबद्ध हूं। राजन्, आप इसमें जरा भी शंका न

करें। मैंने जो कहा है वह मैं आपको करके दिखा दूंगा।"

"आचार्यसुत ! यदि ऐसा हुआ तब तो वहुत भारी काम होगा और तब युधिष्ठिर को भी पता चल जायगा कि सत्य का त्याग करने का क्या फल होता है।" दुर्योधन ने बढ़ावा देते हुए कहा।

"राजन् ! वही होगा। मैं तो हृदय से इस वात की प्रतिज्ञा कर चुका हूं।"

२ / वैर की अग्नि

"बेटा, अभी तू सोया नहीं ?" कृपाचार्य ने बैटते हुए कहा।

इतने ही में पास में सोते हुए कृतवर्मा ने पूछा, "अश्वत्थामा! वहां रथ के पास क्या कर रहे हो? क्या सुबह हो गई ?"

"दिन निकलने में तो अभी वहुत देर है ?" अश्वत्थामा ने जवाब दिया।

"तो फिर रथ किसलिए जोत रहे हो ?" कृपाचार्य ने पूछा।

"मामा ! मेरे दिल की आग ठंडी ही नहीं होती। अब मैं ठहर नहीं सकता। मैंने इसी समय पांचालों की छावनी पर हमला करने का तय कर लिया है।"

"अभी, इतनी रात को ?"

"मामा ! अश्वत्थामा के लिए तो अब रात और दिन एक समान ही हैं।"

"अश्वत्थामा ! तेरा सिर फिर गया मालूम होता है।"

"आप सच कहते हैं, मामा ! अजातशत्रु युधिष्ठिर गुरु की

हत्या के लिए असत्य बोलते हैं, पिता द्रोण ऐसे वचन पर विश्वास कर शस्त्र छोड़ बैठते हैं। पांचालकुमार धृष्टद्युम्न शस्त्र-रहित गुरु का सिर काट लेता है। बलराम और श्रीकृष्ण के देखते-देखते भीमसेन महाराज दुर्योधन की जंघा पर गदा का प्रहार करता है। और जिस मस्तक पर हस्तिनापुर का राज-मुकुट शोभित होता है, उसपर भीमसेन लात मारता हैं। इन सब दृश्यों से अकेले अश्वत्थामा का ही नहीं, बल्कि सारे मानव-समाज का सिर चक्कर खाने लगा है। इतने पर भी पांडव और पांचाल अभी तक किसके भाग्य से जीवित हैं!" अश्वत्थामा ने आवेश के साथ जवाब दिया।

"भाई, दिन निकलते ही मैं और मामा तेरे साथ चलेंगे। हमने पांचालों को परास्त करने का महाराज दुर्योधन को वचन दिया है, यह बात मैं भूल नहीं गया हूं।" कृतवर्मा ने कहा।

"कृतवर्मा, मुझे क्षमा करो। अश्वत्थामा दिन निकलने तक की प्रतीक्षा करने की स्थिति में नहीं है। यह रात्रि मुझे बुला रही है। यह अन्धकार अपना सहयोग देने के लिए हाथ बढ़ा रहा है। इस पेड़ पर का उल्लू सोते हुए सब कौओं को मारकर मुझे कभी का गुरुमंत्र पढ़ा रहा है और वहां उस भूमि पर जीवन के अन्तिम सांस लेते हुए महाराज दुर्योधन मुझे फटकार रहे हैं। मामा! आप जानते हैं कि आज तो हमारे महाराज के एक श्वास का भी मूल्य है। इसलिए मैं यह रात व्यर्थ ही गंवा नहीं देना चाहता।" अश्वत्थामा ने आवेश में कहा।

"अश्वत्थामा! तू कहता है, वह सबकुछ सच है; किन्तु रात के समय शत्रु पर हमला करना उचित नहीं। हम आर्यों के और राक्षसों के युद्धों में यह भी एक भारी अन्तर है। हम आर्य

युद्ध तो करते हैं, किन्तु अपना मनुष्यत्व गंवाकर पशु न बन जाने की दृष्टि सामने रखकर, युद्ध-समाप्ति के बाद हम सव खिलाड़ियों की तरह आपस में मिल-जुलकर रहते हैं। इस प्रकार रात हमारा युद्ध-विराम है। हमारे युद्ध-शास्त्रों ने युद्ध के समय उत्पन्न पशु-वृत्ति को मिटा देने और मानव-हृदय के उच्च अंकुरों को विकसित करने के समय को पवित्र माना है। इसलिए इस समय युद्ध करके हमें उसे अपवित्र नहीं करना चाहिए।" कृपाचार्य ने खिन्न होते हुए कहा।

"मामा! आप कैसी बात करते हैं? यह सारा युद्ध ही अपवित्रता की मूर्ति है।"

"अश्वत्थामा! यह ठीक है कि जहां चाचा भतीजे का सिर काट रहा है, मामा भानजे को पृथ्वी पर लिटा रहा है और भाई भाई के प्राण ले रहा है वहां मानव-हृदय की पवित्रता के लिए स्थान नहीं है। किन्तु आपसी झगड़ों को सुलझाने के लिए जबतक हमारे पास कोई दूसरा उपाय न हो, तबतक ऐसा युद्ध अनिवार्य ही है। किन्तु इसमें भी मनुष्य ने मानवता के कतिपय तत्वों को स्थान देने का प्रयत्न किया है। उन्हींमें से युद्ध का शिष्टाचार पैदा होता है। युद्ध में शत्रु का वध तो किया जाय, किन्तु वह भी वीरता के अमुक मान का पालन करके। उदाहरण के लिए, गदा-युद्ध तो किया जाय, किन्तु उसमें किसी की नाभि के नीचे प्रहार न किया जाय—यह गदा-युद्ध का शिष्टाचार है। इस प्रकार के शिष्टाचार युद्ध की भीषणता में भी मानव-हृदय का सन्देश पहुंचाते हैं और मनुष्य चाहे जितना पशु वन जाय, फिर भी अन्त में है वह मनुष्य ही, यह सिद्ध करते हैं।" कृपाचार्य ने जवाब देते हुए कहा।

"मामा ! मुझे तो ये सब बातें मनुष्य की निरी पशुता के ढकने के लिए शास्त्रकारों का कोरा ढकोसला प्रतीत होती हैं। मनुष्य पशु ही है और पशु ही रहेगा। इस प्रकार के शिष्टाचारों से उसके पशुत्व को ढककर धर्माधर्म के ये ढोंग क्यों खड़े करते हो ? पशु तो पशु ही है। वह एक-दूसरे का शिकार करता है। और जब मौत आती है तो मर जाता है। आपके इन युद्ध-विराम, रात, धर्मयुद्ध और शिष्टाचार आदि सबको धता वताकर मनुष्य एक वार पूरा पशु वन जाय तो ही अच्छा है। मनुष्य यदि सचमुच मनुष्य ही होगा, पशु नहीं तो अन्त में थक जायगा और अपनी पशुता को और उसी तरह इस प्रकार के युद्धों को छोड़ भी देगा। किन्तु आप, शास्त्रकार लोग, एक वार मनुष्य को जी भरकर पशु वन जाने दो न ?" अश्वत्थामा बोला।

"अश्वत्थामा ! कैसी मूर्खता-भरी वातें करता है।" कृपाचार्य से न रहा गया, "तेरे हिसाब से तो फिर धनुर्वेद की ये सब मर्यादाएं निरी मूर्खता ही होंगी ? लेकिन मेरे मत से तो पांडव और पांचाल निश्चिन्त होकर जब सो रहे हों तव उनपर हमला करना स्पष्ट अधर्म है।"

"मैं भी इन्कार कहां करता हूं। मैं तो मानता हूं कि यह युद्ध, यह मार-काट, स्वयं अधर्म है ?" अश्वत्थामा ने कहा, "किन्तु साथ ही मैं मानता हूं कि जब हमने इस महान् अधर्म को अंगीकार ही नहीं किया, वल्कि धर्म समझा, तव यह छोटा-सा अधर्म और सही। शत्रु को जब मारना ही है तो फिर दिन को मारें क्या और रात को क्या ! दोनों ही समान हैं। रात को मारने से सोते में उलटे उसे कम दुःख होगा।"

"अश्वत्थामा ! ऐसा प्रतीत होता है कि द्रोणाचार्य की सारी

विद्या का तुझपर उलटा असर हुआ है। शास्त्रकारों ने तो सोते हुए सिंह तक के शिकार को वर्जित ठहराया है।"

अश्वत्थामा बड़े जोर से हंसा और बोला, "यह तो इसलिए है कि सोते हुए सिंह को मारने में वीरता कम रहती है। इस-लिए जिसे अपनी बहादुरी दिखानी हो वह सिंह को जगाकर उसका शिकार करे। किन्तु जिसके लिए वीरता-अवीरता का कोई सवाल ही न हो बल्कि केवल सिंह के प्राण लेने का ही प्रश्न हो, तो वह सोते हुए को मारे या जगाकर, दोनों एक-से ही हैं। अश्वत्थामा को अपनी वीरता दिखानी हो तो वह सोते हुए शत्रुओं को न मारे। किन्तु आज मेरे लिए तो वीरता का कोई प्रश्न ही नहीं है। इस बात को तो संसार आज तक कई वार देख चुका है कि अश्वत्थामा वीर है और वीर-पुत्र है। इस समय तो मेरे सामने पांचालों के वध का प्रश्न है। इस काम के लिए मुझे दिन की अपेक्षा रात अधिक अनुकूल प्रतीत हो रही है। इसलिए, मामा! आपको वीरता दिखानी हो तो भले ही आप दोनों सुबह आना, मैं तो इसी समय जा रहा हूं।"

"अश्वत्थामा! हमें भी कोई वीरता का ढिंढोरा नहीं पीटना है।" कृतवर्मा ने कहा, "किन्तु हमारे लिए शोभा की बात यही है कि हम मारें तो ललकारकर मारें। सोते हुए पर आक्रमण करना तो निरे कायर का काम है।"

"तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है, किन्तु मैं आज ऐसी स्थिति पर पहुंच गया हूं कि कायर कहलाकर भी आज ही रात को आक्रमण करूंगा। इन पांचालों के नामों का खयाल आते ही मेरे रोएं खड़े हो जाते हैं और उनमें से आग झड़ने लगती है।" अश्व-त्थामा ने रोषपूर्वक कहा, "मामा! मैं आपसे क्या कहूं कोई ऐसा

वेग मुझे ढकेले दे रहा है जिसे मैं समझ नहीं पा रहा हूं, इसलिए मैं विवश हो गया हूं। आप मुझे रोकेंगे तो आत्महत्या के सिवा मेरे लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं रहेगा।"

"अश्वत्थामा ! तू पागल हो जायगा क्या ?" कृपाचार्य ने कहा।

"मामा ! मैं यही चाहता हूं। आज ये शस्त्रास्त्र, यह ज्ञान, यह यज्ञोपवीत, सब भाररूप प्रतीत होते हैं और ऐसा लगता है कि यह सिर भी धड़ से उतर जाय तो बोझ हलका हो जाय। मामा ! इस समय मैं रात-दिन अथवा धर्माधर्म की झंझट में पड़ना नहीं चाहता। जिस तरह भी हो पांचालों की जड़ खोद फेंकूं, बस मेरे मन में तो आज यही एक बात, यही एक काम और यही एक ध्येय समा रहा है। फिर चाहे यह धर्म हो या अधर्म, यह रात में हो या दिन में। पांचालों का नाश किये बिना हृदय की यह आग नहीं बुझेगी।"

"अश्वत्थामा !" कृपाचार्य ने सम्बोधन करते हुए कहा, "मनुष्य के हृदय में तो ऐसी न मालूम कितनी आगें जलती रहती हैं, हमें केवल उनका ज्ञान नहीं होता। आज एक के बुझ जाने पर कल कोई दूसरी धधकती हुई प्रतीत होगी। अश्वत्थामा ! तू यह न समझ बैठना कि हृदय की आग योंहीं बुझ जाती है। कई बार तो एक को बुझाने का प्रयत्न करते हुए मनुष्य दूसरी दस नई आगें प्रज्वलित कर लेता है और अन्त में अपने चारों ओर धधकती हुई अग्नि में जलकर स्वयं ही भस्मीभूत हो जाता है।"

"मामा ! सबकुछ ठीक है। लेकिन इस समय मुझे न रोको।" अश्वत्थामा ने व्यग्रतापूर्वक कहा, "आज आपके शब्द मेरे कानों में गूंजते हैं, किन्तु फिर भी मेरा मन उन्हें सुनना नहीं

चाहता। आज तो जो संकल्प हो चुका वह पूरा होकर रहेगा। मुझे आशीर्वाद दीजिए।''

"किन्तु हम आ ही रहे हैं न ?'' कृतवर्मा ने कहा।

"तुम पीछे आना, मुझे आगे जाने दो। पांचालों का काल मुझे बुला रहा है।''

यह कहते हुए अश्वत्थामा ने अपना रथ पूरे वेग से पांचालों की छावनी की ओर हांक दिया।

३ / अंधेरी रात में

कुरुक्षेत्र के मैदान में अंधकार को वेधता हुआ अश्वत्थामा का रथ धृष्टद्युम्न की छावनी की तरफ बढ़ा जा रहा है।

अश्वत्थामा जन्म से ब्राह्मण है और परमात्मा ने ब्राह्मण के मस्तक में इसलिए विद्यारत्न पैदा किया कि वह अपनी इस विद्या से संसार की सेवा करे। किन्तु अश्वत्थामा के भाग्य में कुछ और ही बदा था। द्रोण को वह प्राणों से भी अधिक प्रिय था; उसके दूध का प्रश्न हल करने के लिए द्रोण द्रुपद के पास गये, अपमान का घूंट पिया और उस अपमान का बदला लेने के लिए द्रुपद को नीचा दिखाकर चैन लिया। अश्वत्थामा के प्रति प्रेम के कारण ही उन्होंने उसे चुपके-चुपके शस्त्रविद्या की शिक्षा दी; उसकी ममता के कारण ही द्रोण ने हस्तिनापुर रहना स्वीकार किया और अन्त में उसीकी ममता के मारे शस्त्र छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हुए।

ऐसे द्रोण का लाड़ला अश्वत्थामा जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मण न रहा था। उसका सारा जीवन हस्तिनापुर के प्रपंचों और शस्त्रास्त्रों की झनकार के बीच ही बीता था। द्रोण

की प्रतिभा और गौरव ने अश्वत्थामा को कुछ अभिमानी भी बना दिया था। आज वह उन्हीं पिता के वध के कारण पागल हो उठा था। पिता के वध से चक्कर खाया हुआ मस्तिष्क कुछ विकृत-सा हो गया था। उसका सारा शरीर कांपने लगा था। उसकी रक्ताभ आंखें देखते हुए भी मानो देख नहीं पाती थीं। घोड़े की लगाम, हाथ का चाबुक, अपना रथ और सारा मार्ग कुछ भी उसे दिखाई नहीं पड़ रहा था। उसकी आंखें देख रही थीं केवल सुदूर छावनी में अपने पलंग पर सोये हुए एक-मात्र धृष्टद्युम्न को।

पांचालों की छावनी के पास पहुंचते ही अश्वत्थामा रथ पर से उतर पड़ा; घोड़ों को खोल दिया और स्वयं छावनी का एक चक्कर लगाने के लिए चल पड़ा। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी; दीपक मन्द-मन्द जल रहे थे। रात्रि ने सारे डेरों पर अपना लिहाफ उढ़ा रक्खा था। केवल दूरी पर एकाध शृगाल बोल रहा था। बीच-बीच में चौकीदारों की आवाज सुनाई पड़ती थी, और दूर—बहुत दूर से महाराज दुर्योधन की आंखें अन्धकार को बेधकर अश्वत्थामा के सारे शरीर में व्याप्त व्यग्रता को टिकाये हुए थीं।

अश्वत्थामा ने घूमकर छावनी का चक्कर लगाया और उसके सारे डेरों की गिनती की। पहरेदार को अच्छी तरह देखा और तुरन्त ही तरकश में से तीर निकालकर उसपर चलाया। रात की शान्ति को बेधता हुआ तीर सन-सन करता हुआ चला; किन्तु पहरेदार का पहरा यथावत जारी रहा। अश्वत्थामा जरा रुका और फिर तुरन्त ही दूसरा तीर चलाया। उसका भी कुछ असर न हुआ और पहरेदार के कदम वैसे ही पड़ते रहे। यह

क्या बात है ? अश्वत्थामा उत्तेजित हो उठा, और एक के बाद एक तीर चलाने लगा। दो, चार, दस, बीस, पच्चीस, पचास, अनगिनत तीर चला डाले, लेकिन ऐसा मालूम होता था मानो पहरेदार उन सबको निगल जाता हो।

'अवश्य ही, यह पहरेदार कोई साधारण व्यक्ति नहीं है।' अश्वत्थामा ने निमिष-मात्र में ही कल्पना कर ली। वह सोचने लगा, 'जबकि अर्जुन तक मेरा एक भी तीर विफल नहीं कर सकता, वहां इस चौकीदार ने मेरे इतने तीर हवा में चलाये गये तीरों की तरह बेकार कर दिये !'

उसने फिर तीर चला-चलाकर अपना तर्कश खाली कर दिया, किन्तु व्यर्थ !

'क्या अकेला पहरेदार ही मेरा सारा समय खा जायगा और दिन निकलने से पहले धृष्टद्युम्न को समाप्त करने का मेरा संकल्प निरा संकल्प ही रह जायगा ? पिता द्रोण आपका पुत्र आज अवश्य ही आपका वैर चुकाकर रहेगा। महाराज दुर्योधन ! विश्वास रखिये जीवन के अन्तिम तट पर बैठे हुए आपको मैं धोखा कभी न दूंगा। यह किसी की आवाज सुनाई दे रही है ? क्या पहरेदार ने किसी को जगा दिया ? नहीं-नहीं, यह तो मेरा निरा भ्रम है।'

अश्वत्थामा इस तरह मन में सोचता-विचारता हुआ छावनी की सीमा के पास पहुंच गया और चौकीदार को सचेत कर कहने लगा, "भाई, मैं नहीं जानता कि मेरे सारे बाणों की परवा न करनेवाले तुम कौन हो ? आज मेरे लिए एक-एक पल का भी मूल्य है इसलिए तुमसे जानना चाहता हूं, अन्यथा तुमसे पूछता तक नहीं। तुम जो कोई भी हो, मुझे इसकी चिन्ता

नहीं। मैं अपने बारे में बता देना चाहता हूं कि मैं आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा हूं और मैंने पांचालों का वध करने की प्रतिज्ञा की है, इसलिए छावनी के अन्दर प्रवेश करना चाहता हूं।"

"खबरदार, आगे कदम न रखना!" पहरेदार ने शान्त किन्तु दृढ़ स्वर में कहा। अश्वत्थामा के पैर न चाहते हुए भी पीछे को खिसक गये। "अश्वत्थामा! तूने मुझे नहीं पहचाना। मैं कैलासवासी शंकर हूं।" पहरेदार ने कहा।

"देवाधिदेव महादेव! मैं अत्यन्त दीनतापूर्वक आपसे भिक्षा मांगता हूं कि आप मुझे अन्दर प्रवेश करने दें।" अश्वत्थामा ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहा।

"मूर्ख ब्राह्मण! शंकर के पहरे को तूने योंही समझ लिया है।" महादेव खिलखिलाकर हंसते हुए बोले, "तुझे पता नहीं, मैं तो श्रीकृष्ण के साथ के अपने मैत्री-सम्बन्ध के कारण ही आज की रात पहरा देने आया हूं, अन्यथा मैं तो अस्त्र-विद्या का जगत्-गुरु हूं। मैंने ऐसे अनेक युद्ध देखे हैं और आगे देखूंगा। क्या तुझे पता नहीं कि तेरे पिता और स्वयं अर्जुन को पाशुपत जैसे अस्त्रों की शिक्षा के लिए हिमालय की शरण लेनी पड़ी थी!"

"देवाधिदेव! आपके प्रभाव को मैं अच्छी तरह जानता हूं।" अश्वत्थामा ने फिर गिड़गिड़ाते हुए, कहा, "आज अन्तर की ज्वाला से तपता हुआ मैं पांचालों का संहार करने के लिए आया हूं। दिन का उजाला होने से पहले-पहले मुझे अपना काम पूरा कर लेना चाहिए। आपके इजाजत देने पर ही मैं छावनी के अन्दर प्रवेश कर सकता हूं। मेरे हृदय में आज जो अग्नि धधक रही है, वह शान्त होने जैसी नहीं है। आपने मुझे अन्दर

प्रवेश न करने दिया तो मैं यहीं इसी जगह जलकर भस्म हो जाऊंगा। प्रभो ! मेरे मन को और कोई रास्ता सूझ ही नहीं रहा है।"

यह कहकर अश्वत्थामा ने तुरन्त अग्नि प्रज्वलित की और उसमें जल मरने के लिए तैयार हुआ।

यह देखकर महादेव कहने लगे, "अश्वत्थामा ! क्या तुझ-जैसे व्यक्ति का इस प्रकार आत्म-हत्या करना उचित है ?"

"भगवन् ! अब भी मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे भीतर प्रवेश करने दें।" अश्वत्थामा ने कहा। "आपके सामने मेरी शस्त्रास्त्र-विद्या कुण्ठित हो गई है, इसलिए मेरे लिए अन्त में एक ही उपाय बच रहता है। इस समय आपके सामने इस प्रकार हतवीर्य हो जाने के बाद मैं मरूं नहीं तो जीकर भी क्या करूं ?"

"अश्वत्थामा ! मेरे पहरे का समय अब पूरा होने आया, इसलिए मैं तो यह चला, किन्तु तुझे यह बता जाना चाहता हूं, कि तेरा यह मार्ग अधर्म का है।" शंकर ने कहा।

"भगवन् ! मेरे सामने इस समय धर्म-अधर्म जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। आपने मुझपर अत्यन्त कृपा की। अब आप पधारें। मैं छावनी में प्रवेश करता हूं।" अश्वत्थामा ने कहा।

"अश्वत्थामा ! जरा सम्भलकर जाना। दूसरों की मौत बुलाते-बुलाते तू खुद ही उसका ग्रास न बन जाना। लेकिन तुम क्या कर सकते हो ? तुम तो सब काल के चक्र में पड़कर दीपक में पतंग की तरह मृत्यु के मुंह में पड़े हुए हो। तुम्हें खुद इस बात की सुधि ही कहां है कि तुम सब क्या करना चाहते हो और कहां जा रहे हो। आज मेरी बात पर ध्यान नहीं दे

रहे हो, लेकिन एक दिन तुझे यह याद आयगी।"

शंकर विदा हुए और अश्वत्थामा भूखे भेड़िये की तरह पांचालों पर टूट पड़ा।

●

पांचालों के शिविर में एक ऊंचे पलंग पर धृष्टद्युम्न सो रहा था। उसके विचार में आज कोई उसकी निद्रा को भंग करने वाला न था, आज रात को न तो युद्ध-समिति की कोई बैठक होनेवाली थी, न सैन्य-निरीक्षण के लिए ही उसे जाना था, आज उसे किसी महारथी के साथ कोई खास मन्त्रणा भी नहीं करनी थी, न किसी नये व्यूह की रचना पर ही विचार करना था; आज कोई सम्वाद देनेवाले भी आने वाले नहीं थे, इसलिए अठारह दिन की मार-काट के बाद वह गहरी नींद में सोया हुआ था। दूसरे दिन महाराज युधिष्ठिर के विजय-जलूस में आगे-आगे चलकर हस्तिनापुर का स्वागत ग्रहण करने के वह मनसूबे बांध रहा था।

चांदनी के समान श्वेत बिछौने पर श्यामवर्ण धृष्टद्युम्न सोया हुआ था। पास ही द्रौपदी के पांच लाड़ले पुत्र और एक तरफ को पांचाल वीर थे ऊपर अंधेरे में होनेवाले संसार-भर के काले कृत्यों के सनातन साक्षी रूप तारे छिटक रहे थे और आस-पास शान्ति, असाधरण शान्ति, मृत्युरूप शान्ति व्याप्त थी। कभी-कभी उलूक की आवाज इस शान्ति को भंग करती हुई सुनाई पड़ जाती थी।

अश्वत्थामा ने शिविर में पैर रखा। उसके हाथ में नंगी तलवार थी। सिर के बाल बिखरे हुए थे। मस्तक पर सिन्दूर का टीका लगा हुआ था। चेहरे से विह्वलता झलक रही थी। आंखों

से खून टपक-सा रहा था और उसके पैरों में किसी महान हत्यारे का-सा आतंक और दृढ़ता थी।

वह सीधा धृष्टद्युम्न के पलंग के पास जा पहुंचा। धृष्ट-द्युम्न को देखते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये। उसके हाथ की तलवार ऊंची हो गई और उसके चेहरे पर आनन्द की मन्द मुस्कान झलकने लगी। होंठ दबाता हुआ वह मन में गुन-गुनाने लगा, 'पांचाल बच्चे, प्रभु को याद कर ले!'

अश्वत्थामा अपने मन में कल्पना कर ही रहा था, इतने ही में आकाश से टूटते हुए एक तारे का प्रकाश धृष्टद्युम्न के मुँह पर पड़ा। इस प्रकाश में अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न का मुंह देखा और तत्काल ही वर्षों पहले धृष्टद्युम्न के शिष्य-भाव से द्रोणा-चार्य के पास आने का दृश्य उसकी आंखों के सामने आ खड़ा हुआ। उसके मन में उस समय का बाल-भाव लहरें लेने लगा और इसलिए तलवार का प्रहार करने के लिए उठाया हुआ हाथ सहज ही धीमा पड़ गया और न जाने किस तरह आंखों के सामने अंधेरा छा गया!

एक क्षण में ही यह सबकुछ हो गया और दूसरे क्षण ही वह अपनी दुर्बलता को झंझोड़कर सिंह की भांति जाग्रत् हो गया। दुर्योधन के सामने की हुई प्रतिज्ञा फिर से मन में ताजी की; धृष्टद्युम्न के विरुद्ध अपने वैर को फिर से जगाया, पिता का बदला लेने का अपना निश्चय फिर से दृढ़ किया और आंखें मींचकर सोते हुए धृष्टद्युम्न पर खड्ग का प्रहार किया ?

एक प्रहार से पांचाल-पुत्र के दो टुकड़े हो गये। दूसरे प्रहार में पांचाली के पुत्रों के सिर धड़ से पृथक् हो गये। और

अगले प्रहारों से पांचाल वीरों के टुकड़े होने लगे। इस प्रकार जहां एक क्षण पहले असाधारण शांति व्याप्त हो रही थी वहां भयंकर घमासान मच गया। एक क्षण जहां चांदनी की तरह विछे हुए सफेद बिस्तर शोभा दे रहे थे, वहां रक्त से भीगी हुई चादरों से खून टपकने लगा। एक क्षण पहले जो पांचालों का शिविर था, वह इस समय उनका वध-स्थल बन गया।

और अश्वत्थामा !

पांचालों का विनाश करने के दूसरे ही क्षण उसके सिर का भूत उतर गया। एक क्षण पहले सिंह के समान प्रतीत होने-वाला अश्वत्थामा दूसरे ही क्षण बकरी के समान दिखाई देने लगा। दूर-दूर हवा में उसे गाण्डीव की ध्वनि और द्रौपदी की चीत्कार सुनाई देने लगी। स्वयं अपनी ही अन्तरात्मा में उसे हृदय की फटकार सुनाई देने लगी। वह भयभीत हो उठा और उसी भयभीत अवस्था में वह भाग खड़ा हुआ।

४ / धुंधवाती आग

"भाई, तुम घड़ी-भर के लिए जरा सो जाओ।" व्यास भगवान् के पुत्र गौतम ने अश्वत्थामा से कहा, "गंगा के तीर पर ऋषि-मुनियों का एक भारी संगम हो रहा है, पिताजी उसमें सम्मिलित होने गये हैं।"

"ऋषि-मुनियों का संगम ?" अश्वत्थामा ने पूछा।

"हां, तुमने यह सुना कि नहीं, हस्तिनापुर के राज-मुकुट के लिए कौरव-पांडवों के बीच आज कई दिनों से युद्ध चल रहा है ?" गौतम ने कहा।

"इसका ऋषि-मुनियों से क्या सम्बन्ध ? संसार आज तक इसी तरह लड़ता आया है और आगे भी लड़ता रहेगा। ऋषि-मुनि तो हिमालय की गुफाओं में बैठकर समाधि लगाते रहा करें, उनका और लड़ाई का परस्पर क्या सम्बन्ध ?" अश्वत्थामा बोला।

"यह कैसे कहा जा सकता है ।" गौतम ने आवेश में कहा, "मेरे पिताजी के लिए यह न समझ बैठना कि वह अपने आश्रम में वृक्ष के नीचे बैठे हुए निरी आंखें बन्द किये रहते हैं। समस्त मानव-समाज का कल्याण उनका जीवन-व्रत है। जिस समय संसार वैर-विष की अग्नि में जलने लगता है, क्या उस वैर-विष को मिटाने का उपाय सोचना इन ऋषि-मुनियों का कर्त्तव्य नहीं है ? पिताजी लौटकर संगम का हाल सुनायेंगे तब तुम्हें पता चलेगा कि इन ऋषि-मुनियों और नामधारी ऋषि-मुनियों के बीच कितना अन्तर है। अच्छा, अब सो जाओ। पिताजी आयेंगे उस समय मैं तुम्हें जगा दूंगा।"

"मुझे सोना नहीं है।" अश्वत्थामा बोला।

"मैं देख रहा हूं कि तुम्हारी आंखों में नींद घुट रही है। हमारी किसी की भी आंखें ऐसी हों तो कुछ भी होता हो हमें नींद आ जाती है।" गौतम ने कहा।

"गौतम ! तुम्हें पता नहीं, आज कितने ही दिनों से मैं तो अपनी नींद गंवा बैठा हूं।" अश्वत्थामा ने बताया।

"नीद गंवा दी ?" गौतम ने अश्वत्थामा की आंखों से आंखें मिलाते हुए कहा, "पिताजी तो कहा करते हैं कि या तो चक्रवर्ती राजा की नींद जाती रहती है या फिर हत्यारे की। तुम कोई बड़े भारी चक्रवर्ती तो नहीं हो ?"

"नहीं भाई।" अश्वत्थामा ने निश्वास लेते हुए कहा।

"तब सो जाओ?" गौतम बोला, "भाई, तुम लोग तो बड़े आदमी ठहरे, इसलिए, नींद तुमसे चौंककर भागती फिरती है। और हमारे पास तो यह वृक्ष की छाया है, दिन-भर के परिश्रम की थकावट है, ऊपर आकाश की छाया और नीचे भली पृथ्वी माता हैं। इसलिए हम नींद को छोड़ना चाहें तो भी वह हमें न छोड़ेगी।"

"गौतम! मैं जब तुम्हारे जैसा था, उन दिनों भी मेरे भाग्य में ऐसी कोई बात न थी।" अश्वत्थामा ने निराशा के स्वर में कहा।

"क्या तुम भी आश्रम में रहते थे?" गौतम ने कौतूहल-पूर्वक पूछा, "तुम्हारे भी पिताजी थे? तुम भी इसी तरह हिरनों के साथ खेला करते थे? तुम भी ऐसे कुंजों में अध्ययन करते थे? तब तो पक्षियों का यह मधुर कलरव तुमने बहुत सुना होगा। देखो न कैसी मधुर और मन्द पवन चल रही है! जरा लम्बे हो जाओ। तुम्हारे लिए मैंने अपनी दरी बिछाई है।"

"गौतम! तुम ज्यादा बातें न करो और मुझे शांति से रहने दो तो कैसा?"

"क्यों, क्या तुम्हें नींद आने लगी?"

"नींद तो नहीं आई, लेकिन तुम जब ज्यों-ज्यों ये बातें करते हो त्यों-त्यों मेरे मन में न मालूम क्या होने लगता है। तुम्हारे शब्द सुनते ही मेरे हृदय की अनेक पीड़ाएं जाग उठती हैं।" अश्वत्थामा ने व्यथित स्वर से कहा।

"तुम्हारे शरीर में पीड़ा है। यह कहो न कि तुम बीमार हो इसलिए नींद नहीं आती।" गौतम ने अपना कहना जारी

रक्खा, "पिताजी केवल ऋषि ही नहीं हैं, असाध्य रोगों को मिटा सकनेवाले वैद्य भी हैं। तुम्हें ठीक ही सूझा कि यहां आ गये। यहां की हवा ही ऐसी है कि मनुष्य निरन्तर अपने फेफड़ों में उसे खींचे तो सव बीमारियां अनायास ही दूर हो जाती हैं। अच्छा, अव तुम्हें नहीं छेड़ूंगा। जरा लेट जाओ। मेरी तो नींद उचट गई है, इसलिए जरा उधर गौओं को घास के दो पूले डाल आऊं।"

यह कहता हुआ गौतम वहां से उठकर चलता हुआ। अश्वत्थामा भूमि को कुरेदता हुआ वहीं बैठा रहा।

●

आश्रम में व्यास भगवान् अपने शिष्य-मंडल के साथ बैठे थे और समस्त संसार के वैर-विष के विनाश के लिए आश्रमवासियों को क्या करना चाहिए इसकी चर्चा चल रही थी। अश्वत्थामा वल्कल वस्त्र धारणकर व्यास मुनि की ओट में छिप गया था।

इतने ही में सड़क पर से रथ की गड़गड़ाहट सुनाई दी। गड़गड़ाहट सारी शिष्य-मंडली के कानों में पड़कर शान्त हो गई, किन्तु अश्वत्थामा के कान चौकन्ने हो गये, उसका शरीर तन गया, उसकी आंखें जमीन से हटकर सड़क की ओर जा लगीं और पलक मारते ही वह आम्र-कुंज से बाहर निकलकर रास्ते के खेतों में उगी हुई दूव पर जा खड़ा हुआ।

आश्रम के पास की सड़क पर दो रथ दौड़ते हुए आ रहे थे। आगे के रथ में भीमसेन बैठा हुआ घोड़ों को तेजी से हांकता ला रहा था; उसके पीछे के रथ के घोड़ों की लगाम श्रीकृष्ण के हाथों में थी।

"यह रहा वह दुष्ट!" भीमसेन रथ में से ही चिल्ला उठा और तत्काल उसपर से नीचे कूद पड़ा। श्रीकृष्ण ने भी अपना

रथ ठहरा दिया और अर्जुन तथा युधिष्ठिर को साथ लेकर नीचे उतरे।

अश्वत्थामा जरा घबराया। उसे निश्चय था कि भीम उसका वध किये विना न रहेगा। उसके पास और कोई साधन अपने बचाव का नहीं था। रथ जोतने योग्य धैर्य नहीं था और न भाग जाने का समय। वह बड़े चक्कर में पड़ गया। उसने एका-एक ही मानो कुछ निश्चय कर लिया और दूब के एक तिनके को मंत्रित करके संकल्प किया, 'शत्रु पर आज मैं इस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता हूं। यह ब्रह्मास्त्र पांडव-कुल को निर्बीज कर दे।'

दूब का तिनका फेंकने-भर की देर थी कि दिशाएं चारों ओर से काली होने लगीं। एक तिनके में से जलते हुए अनेक शस्त्रास्त्र छूटने लगे। प्रलय काल की पवन चलने लगी, आकाश में अभूत-पूर्व गड़गड़ाहट होने लगी और आश्रम के पशु-पक्षी त्रस्त हो इधर-उधर रक्षा-स्थल ढूंढ़ने लगे।

"अर्जुन! इस दुष्ट ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया है। तू भी तो यह प्रयोग जानता है। अतः जल्दी कर।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"श्रीकृष्ण! आचार्य द्रोण का तो यह आदेश है कि ऐसे अवसरों पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग नहीं होना चाहिए।" अर्जुन बोला।

"रहने दो ऐसे आचार्य के आदेश। द्रोण के वध के साथ ही उनके आदेश भी समाप्त हो गये। श्रीकृष्ण! अर्जुन से यह कुछ न होगा। अश्वत्थामा का काम मैं पूरा करूंगा।" भीमसेन ने कहा।

"अर्जुन! तू भूल करता है।" श्रीकृष्ण ने सम्बोधन करते

हुए कहा, "ब्रह्मास्त्र जैसे शस्त्रास्त्रों का प्रयोग इसीलिए निषिद्ध माना गया है कि लोग उनका उपयोग दूसरों के संहार के लिए करते हैं। ऐसे अस्त्रों की शोध करके मानव-समाज को स्वयं ही पश्चात्ताप करना पड़ा है। द्रोण ने यह समझकर कि लोगों के अन्तःकरणों के अच्छी तरह निर्णय होने से पहले इस प्रकार के अस्त्रों की शोध का उपयोग समाज के कल्याण की अपेक्षा अकल्याण के लिए ही अधिक होगा, तुझे यह आदेश दिया होगा। किन्तु सखा! इस समय तुझे लोक-कल्याण की दृष्टि से ही ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना है; वध की दृष्टि से नहीं।"

"श्रीकृष्ण! तुम्हें ऐसे समय में अर्जुन के साथ मगज-पच्ची करना कैसे अच्छा लगता है। मुझे इसके जितनी विद्या प्राप्त होती तो आज मैं संसार को दिखा देता।" भीम ने उतावली के साथ कहा।

"अर्जुन!" श्रीकृष्ण ने सम्बोधन करते हुए कहा, "जल्दी करो। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को और अधिक फैलने का अवसर मिल गया तो हम सबको भारी पड़ेगा।"

"अच्छी बात है।" अर्जुन बोला और तुरन्त ही ब्रह्मास्त्र का स्मरण कर संकल्प किया—'अश्वत्थामा के कल्याण के लिए, हमारे अपने कल्याण के लिए और अखिल मानव-समाज के कल्याण के लिए मैं ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता हूं।' इस संकल्प के साथ उसने ब्रह्मास्त्र चलाया।

व्यास के आश्रम पर दो ब्रह्मास्त्र आमने-सामने टकराये, इसलिए कुछ देर के लिए अन्धकार और सघन हो गया और पृथ्वी कांपने लगी। साथ ही ऐसा प्रतीत होने लगा मानो आश्रम वायु में विष व्याप्त हो गया हो!

व्यास भगवान् अपने कुंज में बैठे थे। वहां से उठ खड़े हुए। हाथ में पलाश-दण्ड और दूब ली और अपनी योग-दृष्टि से आकाश की ओर देखकर वहां आ पहुंचे।

उन्हें आया देखकर युधिष्ठिर ने अभिवादन किया, "प्रभो, पुराण ऋषि ! आपको अनेक नमस्कार।" और उनके चरणों में लेट गये।

व्यास भगवान् ने अश्वत्थामा की ओर भृकुटी चढ़ाते हुए रोष के साथ कहा, "अच्छा अश्वत्थामा, मैंने तुझे अपने आश्रम में क्या इसीलिए आने दिया था। तूने ये वल्कल वस्त्र इसीलिए धारण किये हैं ? तूने कुंज में बैठकर ऋषि-मुनियों के संगम की जो चर्चा सुनी उसका क्या यही परिणाम है ?"

"भगवन् ! ये लोग मेरा वध करने के लिए आये हैं।" अश्वत्थामा घबराता हुआ बोला।

"तूने इनके पुत्रों का वध किया। उस समय इस बात का विचार नहीं किया ?"

"अश्वत्थामा ! मुझे दुःख इस बात से होता है कि तू अपने ब्राह्मणत्व से इतना नीचे गिर गया है ! जिस दिन स्वयं ब्राह्मण की ब्राह्मण-जीवन से श्रद्धा मिट जाय, उसी दिन समझ लेना चाहिए कि संसार के अकल्याण का श्रीगणेश हो गया। वैर के मारे तेरे पिता ने ब्राह्मण-जीवन को उठाकर ताक पर रख दिया था और तूने तो उसे तिलांजलि ही दे डाली।" व्यास ने कहा।

"भगवन् ! यह ठीक है कि मैं आज ब्राह्मण नहीं रहा। मेरी आपसे अब यही प्रार्थना है कि आप इन लोगों से मेरी रक्षा करो, जिससे मैं आपकी सेवा में रह सकूं।"

"तो फिर यह ब्रह्मास्त्र किसलिए चलाया था ?"

"अपने बचाव के लिए।"

"किन्तु क्या तुझे पता नहीं कि कोई भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग इस तरह नहीं कर सकता ?" व्यास ने कहा।

"मुझे अपने सामने मौत खड़ी दिखाई दे रही थी, इसलिए मुझे इस बात का कुछ विवेक नहीं रहा।" अश्वत्थामा ने जवाब दिया।

"और अर्जुन ! तूने भी भारी भूल की है।" अर्जुन की ओर मुड़ते हुए व्यासजी ने कहा, "ब्रह्मास्त्र के प्रयोग सम्बन्धी विधि-निषेध का तुझे पता है। उसका तूने ध्यान न रक्खा सो तो है ही, पर, साथ ही इस बात का भी खयाल न रक्खा कि यह मेरा आश्रम है।"

"भगवन् ! मैंने किसी के प्रति द्वेष-भावना से नहीं, प्रत्युत संसार-मात्र और स्वयं अश्वत्थामा के कल्याण की दृष्टि से इसका प्रयोग किया है। तिसपर यह बात तो स्पष्ट ही है कि हमें उसके ब्रह्मास्त्र से अपनी रक्षा करनी थी।" दोनों हाथ जोड़ते हुए अर्जुन ने कहा।

"चिरंजीव ! इन अठारह दिनों के युद्ध के बाद भी एक बात तेरी समझ में नहीं आई। मनुष्य-मात्र शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करने के समय यही कहते हैं कि हम तो अपनी रक्षा के लिए उनका प्रयोग करते हैं और साथ में संसार के कल्याण की भी डींग हांकते हैं। किन्तु दूसरों को मारने से मनुष्य स्वयं अपनी रक्षा तक नहीं करता और संसार का कल्याण तो निश्चित रूप से नहीं करता। तुम्हारे ये शस्त्रास्त्र क्या करते हैं और क्या कर सकते हैं, इस बात का इतना भारी प्रदर्शन हो चुकने पर भी, तुम्हारा यह भ्रम अभी ज्यों-का-त्यों बना ही हुआ है। अर्जुन ! जिसके रथ की

बागडोर श्रीकृष्ण के हाथ में हो उसकी समझ में तो यह बात कभी की आ जानी चाहिए थी।''

"मुनिराज! रथ की बागडोर तो अवश्य ही मेरे हाथ में है, लेकिन जहां के लिए यह कहता है उधर ही हांकता हूं।" श्रीकृष्ण ने हंसते-हंसते कहा।

"अच्छा अर्जुन! तू अपना ब्रह्मास्त्र वापस ले ले।" व्यास मुनि ने अपना दाहिना हाथ ऊंचा उठाते हुए आदेशात्मक स्वर में कहा।

"जैसी आपकी आज्ञा।" यह कहकर अर्जुन ने अपना ब्रह्मास्त्र वापस ले लिया।

"अश्वत्थामा! अब तू भी अपना ब्रह्मास्त्र वापस ले ले।" व्यास मुनि ने अश्वत्थामा की ओर मुड़कर कहा।

"भगवन्! मुझे वापस लेना नहीं आता।" अश्वत्थामा कांपते हुए बोला।

"वापस लेना नहीं आता! तब मूर्ख, तूने इसका प्रयोग किया ही क्यों?" व्यास ने चकित होते हुए पूछा।

"भगवन्! वापस लेना आता नहीं और प्रयोग करते समय संकल्प यह किया है कि पाण्डव-कुल का नाश हो!" अश्वत्थामा ने जवाब देते हुए कहा।

"अरे दुष्ट!" व्यास ने खिन्न स्वर से कहा, "द्रोण ने यही सबसे बड़ी भूल की कि पुत्र-स्नेह से प्रेरित होकर तुझे यह अस्त्र सौंप दिया। तूने उस भूल का खूब लाभ उठाया। ब्राह्मण का जब पतन होता है तो उसका अन्त कहां जाकर होगा यह कोई नहीं कह सकता। अच्छा बता, अब तेरा ब्रह्मास्त्र अन्त में कहां जाकर गिरेगा?"

"उत्तरा के गर्भ पर।" अश्वत्थामा ने कहा।

भीमसेन से न रहा गया। उसने कहा, "मुनिवर! मैं इस अश्वत्थामा का वध करने आया हूं। इसका वध न किया गया तो द्रौपदी अनशन करके अपने प्राण त्याग देगी। आपकी आज्ञा से अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र तो वापस ले लिया, किन्तु अब मैं अश्वत्थामा को न छोड़ूंगा।"

"भीम! अश्वत्थामा को मारकर क्या करेगा?" व्यास ने पूछा।

"अपने और द्रौपदी के मन को शान्त करूंगा।"

"यह केवल विडम्बना है।" व्यास ने कहा, "इस प्रकार मन शान्त होता तो अठारह अक्षौहिणी सेना का वध करके शान्त हो जाता। मन को सच्ची शान्ति तो तब होगी जब सारा संसार इन शस्त्रास्त्रों का त्याग कर देगा। प्रभो, श्रीकृष्ण! आप इस समय कुछ बोलते क्यों नहीं?"

"पुराण मुनि! जहां आप जैसे मुनि रात-दिन संसार के कल्याण का चिन्तन करते रहते हों वहां मेरे कहने योग्य बात ही क्या रह जाती है?" श्रीकृष्ण ने कहा।

"भीम! यह अश्वत्थामा तुम सबके गुरु द्रोणाचार्य का पुत्र है। इसमें सन्देह नहीं कि इसने जैसी भूल की है, उससे तुम इसका सिर काट सकते हो। किन्तु भूल का बदला मृत्यु से पूरा नहीं होता। कहो, युधिष्ठिर! तुम्हें यह बात कैसी प्रतीत होती है?" व्यास मुनि ने कहा।

"मुनिराज! आप ठीक ही कहते हैं। युधिष्ठिर ने कहा, "छावनी से चलते समय तो मैं भी अश्वत्थामा के वध का निश्चय करके ही चला था; किन्तु अब मेरा मन उससे पीछे हटता है।

गुरुपुत्र का वध करके मैं प्रसन्न नहीं होना चाहता।"

"तब क्या द्रौपदी को गंवाकर प्रसन्न होंगे।" भीम ने रोष से पूछा।

"श्रीकृष्ण ने कहा, "भीम! इस तरह उतावले न होओ। अश्वत्थामा ब्राह्मण है, इसके मस्तिष्क में मणि है। उस मणि पुत्र को ले लेना उसका वध करने के समान ही है। हम अश्वत्थामा को द्रौपदी के पास ले जायंगे। द्रौपदी भी पांचालराज की पुत्री है। उसके हृदय में भी क्षत्रियत्व की उदारता है। गुरु को क्षमा कर अपनी महत्ता सिद्ध करना उसे भी रुचिकर प्रतीत होगा। धर्मराज युधिष्ठिर, तुम्हारी क्या राय है?"

"आपका कहना ठीक है?"

"अच्छा तो अश्वत्थामा! अब तू रथ पर चढ़कर इनके साथ चलेगा और द्रौपदी मांगे तो बिना किसी आनाकानी के अपने सिर की मणि निकालकर उसे दे देना। तू देने में नहीं हिचकिचायेगा तो उसे लेने में हिचकिचाहट जरूर होगी और यदि तू देने में हिचकिचाया तो उसे उसके लेने का और अधिक आग्रह होगा। संसार का यही सनातन नियम है।" व्यास ने कहा।

"प्रभो! आप पर श्रद्धा रखकर मैं रथ पर सवार हो इनके साथ जाता हूं। वहां से वापस लौटकर आपके पास ही रहूंगा।"

"द्रोण-सुत!" व्यास ने जवाब दिया, "पीछे की बात पीछे होगी। मस्तक की मणि गंवाने के बाद तो तुझे कुछ दिन पृथ्वी पर इधर-उधर भटकते ही फिरना होगा; तेरा चित्त किसी एक जगह जम ही न सकेगा। सारे जीवन को विकृत कर देने पर उसके अच्छे होने में भी समय तो लगेगा ही। तू जब कभी भी आयगा, तेरे लिए आश्रम के द्वार खुले होंगे। किन्तु अश्वत्थामा!

आश्रम में ऐसा रहने का उफान तो बहुतों के मन में पैदा होता है किन्तु वह निरा उफान न रहकर निश्चय के रूप में परिणत हो, इसके लिए ईश्वर की कृपा की आवश्यकता है। अच्छा आज तो तू जा! प्रभु तेरा कल्याण करें; तुम सबका कल्याण करें। प्रभु! संसार का कल्याण हो।"

अश्वत्थामा को लेकर भीमसेन आदि विदा हुए और व्यास भगवान् आश्रम की ओर लौटे।

□□

महाभारत पात्र-माला

□□
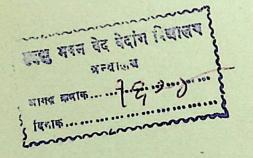
१. सूतपुत्र कर्ण
२. पांचाली द्रौपदी
३. दुर्योधन
४. महावीर भीमसेन
५. महारथी अर्जुन
६. धर्मराज युधिष्ठिर
७. कुंती : गांधारी
८. द्रोण : अश्वत्थामा
९. पितामह भीष्म
१०. धृतराष्ट्र
११. श्रीकृष्ण

□ □